श्रीहरिः

लखनऊ की कब्र. राजसिंह, चपला, माधवीमाधव, तारा, पन्नाबाई, इन्दिरा, लीलावती, रज़ीयाबेगम, मल्लिकादेवी, राजकुमारी, स्वर्गीय-कुसुम, तरुणतपस्विनी, हृदयहारिणी, लवङ्गलता, याकूतीतख़्ती, कटेमूड़ की दो दो बातें, कनककुसुम, सुखशर्वरी, गुलबहार इत्यादि उपन्यासों के रचयिता—

श्रीकिशोरीलालगोस्वामि-रचिता

" नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः ।
नालमर्थाः समर्थानां न सुखानामलं धनम् ॥"
(महाभारत)

श्रीछबीलेलालगोस्वामि-द्वारा

श्रीसुदर्शनप्रेस, वृन्दावन से छपकर प्रकाशिता ।

दूसरी बार १००० | सन् १९१६ ईस्वी | मूल्य बारह आने

उपोद्घात ।

इस उपन्यास में बंगदेश की एक उस समय की घटना का वर्णन किया गया है, जब दिल्ली के तख़्त पर नेकनाम गयासुद्दीन बलबन बादशाह विराजमान था और बंगाले की बागडोर एक महा अत्याचारी तुगरलख़ां जैसे निर्दय नव्वाब के हाथ में थी ।

यवनों के अत्याचार से जर्जरित होने पर इस देश का पहिला गुलाम बादशाह कुतबुद्दीन ऐबक (सन् १२०६ ई०) में हुआ। इसके बाद एक शताब्दी से कुछ कम काल तक इसी गुलामख़ांदान के तहत में दिल्ली की बादशाहत रही ।

गुलामखांदान के निम्नलिखित दस बादशाह इस क्रम से दिल्ली के तख़्त पर बैठे,—

१ कुतबुद्दीन ऐबक (सन् १२०६ ईस्वी) २ आरामशाह (१२१०) ३ शमसुद्दीन अलतिमश (१२१०) ४ रुकनुद्दीन फ़ीरोज़शाह (१२३६) ५ रज़ीयाबेगम (१२३६) ६ मुइज़ुद्दीन बहराम (१२३९) ७ अलाउद्दीन मसऊद (१२४१) ८ नासिरुद्दीन महमूद (१२४६) ९ गयासुद्दीन बलबन (१२६६) और १० मुईज़ुद्दीन कैकुबाद (१२८६)

गुलामखान्दान के इन दस बादशाहों में गयासुद्दीन बलबन बहुत ही भला और योग्य बादशाह हुआ। उसीके समय की एक घटना का अवलंबन करके यह उपन्यास लिखा गया है [आशा है कि इसके पढ़ने से पाठक उस पुराने ज़माने के आचार, व्यवहार, राजनैतिक और सामाजिक तत्त्व तथा देशदशा के परिचय को भलीभांति पा सकेंगे।]

ग्रन्थकार—

श्रीहरिः

मल्लिकादेवी

वा

वङ्गसरोजनी

उपन्यास.

पहिला परिच्छेद.

प्रथम दर्शन ।

" यच्चिन्तित तदिह दूरतर प्रयाति,
यच्चेतसा न गणित तदिहाभ्युपैति ॥ "

(रामायण)

अहाहा ! गरमी की ऋतु सचमुच बड़ी भयंकर होती है, तिस पर वैशाख का महीना; बस भगवानही बचावे ! ऐसी ऋतु के ध्यान-मात्र से रोमकूप पसीने से भर उठते हैं; फिर जिनके सिर यह बला पड़ती है, उनका तो कुछ कहना हीं नहीं, कि छट्ठी का दूध याद करा देती है। दो पहर का समय, आकाश के बीचोंबीच खड़े होकर सूर्य भगवान अपने अग्निवाण के समान किरणों से आग बरसा कर मानों संसारी जीवों को भस्म करने का प्रयत्न कर रहे हैं, और इस तरह क्रोध से लाल लाल आंखें निकाल कर विचारी पृथ्वी की ओर घूर रहे हैं, कि मानों अभी छिन भर में इसे धूल में मिला देंगे।

ठीक उसी समय, ठडाठोक दुपहरी में एक युवापुरुष फौजी

अफसरों की सी चमकीली और दामी पोशाक पहिरे, सिपाहियाना ठाठ से बड़ी तेजी के साथ सूनसान जंगल में अपना मुश्की घोड़ा फेंकता हुआ पूरब की ओर चला जाता था। उसके दाहिने हाथ में बरछा, बायें में लगाम, पीठ पर ढाल, और परतले में एक ओर पिस्तौल और दूसरी ओर छोटी बड़ी दो तलवारें लटक रही थीं। घोड़ा क्या था, ज. ू था। इस तरह वह कानों को खड़ा कर गर्दन उठाए हुए उड़ा जाता था, मानो हवा से बातें करता हो! देखते देखते सघन बन को लांघ कर वह युवा परपट मैदान में आया, और धूप की गरमी से विकल होकर घोड़े की चाल को उसने और बढ़ाया। यद्यपि घोड़ा भी कई कोस तक तेजी के साथ दौड़ते दौड़ते थक कर पसीने पसीने होगया था और मारे घाम के घबरा उठा था, तौभी अपने स्वामी के चाबुक की चोट से तलमलाता हुआ सरपट मारे चलाही जाता था।

ऐसे सूनसान मैदान में गरमी की ऋतु में, ठीक दोपहर के समय घोड़ा दौड़ाना कुछ हँसी खेल नहीं है, जान जोखों का काम है। कोसों तक सायेदार पेड़ों का नाम निशान तक नहीं, और न कहीं नदी न कुवां; बस पूरा मौत का सामना था। कोसों तक मरुभूमि सूरज की किरनों से तपकर लाल लाल अंगारे, या तपाये हुए सोने, अथवा टेसू की क्यारी की भांति प्रतीत होती थी। कहीं कहीं ताड़, बबूल, कैथ और रेंड के पेड़ों में अपने घोसले में दबके हुए पखेरू दाना नहीं चुगते थे और न इधर उधर थोथी छाया में अचेत लुढ़के हुए चौपाये चारा चरते थे। न पछी आकाश में, न पशु पृथ्वी पर चरते फिरते दिखाई देते थे। जो जहां था, वह वहीं अपनी जान के लिये हैरान पड़ा तड़प रहा था; तो फिर ऐसे भयानक समय में कहीं किसी चलते फिरते आदमी का दर्शन न हो तो इसमें अचरज की कौन सी बात है! यदि ऐसे आफत के समय में कोई मैदान में था तो वही हमारा नौजवान वीर बांका और उसका जानदार जानवर घोड़ा, और तीसरी पटपर मैदान मे लहराती हुई लूह!!!

हम ऊपर लिख आए हैं, कि वह युवा घोड़ा रपेटे हुए पूरब की ओर चला जाता था, मारे घाम के उसके अंगअंग से पसीने की बूंदें टपक रही थीं, मुख लाल और रूखा हो रहा था। उसके मुख की फीकी प्रभा ऐसी दिखाई देती थी, मानों अभी सरोवर में से लाकर

खिले हुए कमल को धूप मे डाल दिया हो! ऐसी गरमी, ऐसा पसीना, ऐसी धूप और ऐसी दशा, परन्तु फिर भी उसी प्रकार दृढ़ता के साथ अपनी सीधपर चले जाना हमारे वीर युवा का ही काम था।

देखते देखते पांच सात कोस वह और निकल आया। गरमी, प्यास और परिश्रम के मारे घोड़ा और सवार, दोनों व्याकुल हो गए थे; पर न कहीं जलाशय था, न टिकने का स्थान! तब किया क्या जाता, फिर वही घोड़ दौड़!!!

बिचारा घोड़ा भी पसीने में डूबा हुआ चमोटी के डर से कान पोंछ उठाकर तेजी के साथ पूरब की ओर चला जाता था, टाप से बराबर चिनगी उड़तीं और उस सन्नाटे में अजब समा दिखाती थी। सवार के तालू चटकते और घोड़े के मुहँ से झाग बही जाती थी। जरा भी घोड़े की चाल रुकी कि फिर वही चाबुक, और वही दौड़ादौड़!!!

यद्यपि युवा ऐसी शीघ्रता से चला जाता था, किन्तु जलपान और छिनभर विश्राम के लिये चारों ओर आंख पसार कर किसी उत्तम स्थान की खोज भी लगाता जाता था; क्योंकि अब बिना सुस्ताने के प्राण नहीं बच सकते थे। इतनेही में उसकी दृष्टि ज्योंही पूरब और दक्खिन के कोने (अग्निकोन) में गई त्योंहीं दिखाई दिया कि आधकोस की दूरी पर कोई ऊंचा ढहा हुआ टीला पड़ा है। उसे देख कर हमारे युवा को कुछ आशा हुई और प्रसन्नता के साथ ही उसके शरीर में दूना बल आगया। पलभर में उस टीले के पास पहुंच कर उसने देखा कि किसी पुरानी गढ़ी या आलीशान देवमदिर का टूटा फूटा खंडहर अपने दिनों के फेर का प्रत्यक्ष दिखला रहा है कि संसार में जो कुछ दिखाई देता है, उसका एक न एक दिन अवश्य नाश होगा।

युवा घोड़े से उतर पड़ा और उसे चराई के लिये छोड़ दिया। घोड़ा भी अपने मालिक से छुट्टी पाकर पासही एक कीचड़ भरे गड़हे पर ऐसे बेग से झपटा कि जैसे बाज बहरी पर, और पिंजरे से निकलकर शेर बकरी पर गिरता है। वह गदला पानी पीकर कुछ ठंढा हुआ और इधर उधर सूखी सूखी घास चरते चरते हिन-हिनाता हुआ छाया ढूंढ़ने लगा।

युवा ने चारोओर पानी खोजा, किन्तु उस कीचड़वाले गड़हे के

अलावे और कहीं भी बावली, कुवा, या तालाब नहीं दिखाई पड़ा। आस पास कोई गांव भी नहीं दीख पड़ता था कि वहीं जाकर प्यास बुझाई जाती। युवक निराश हो अपने टूटे फूटे हृदय को बटोर कर उसी टीले के चारों ओर, जो कि चौथाई मील के घेरे में था, घूमने और द्वार ढूंढने लगा। खोजते खोजते दक्खिन ओर सघन झाड़ी से घिरा हुआ एक दर्वाजा दिखाई दिया, जिसे देखतेही हमारे वीर युवक के निराश मन में फिर आशा ने प्रवेश किया और कह दिया कि यहां केवल जलही से नहीं, वरन किसी अलौकिक अमृत से भी तुम्हारा कलेजा ठंढा होगा, जिसकी तरी जनम भर हृदय पर तरावट का असर पहुंचाया करेगी।

युवा द्वार पर ठहर गया और इधर उधर खूब अच्छी तरह देख भाल कर यह निश्चय कर लिया कि, 'जब तक भीतर से कोई द्वार न खोल दे, तब तक इस खंड़हर के भीतर किसी तरह कोई भी नहीं जा सकता। यद्यपि यह खंडहर है, पर इसमें ऐसी विचित्रता है कि दर्वाजे की सहायता बिना भीतर जाना कठिन ही नहीं, वरन एक प्रकार असंभव है!'

यह सब देख सुन कर युवा ने फिर सोचा कि, 'या तो यह किसी पुराने जिमीदार की गढ़ी होगी,या कोई देवमन्दिर जो समय के फेर से इस दशा को पहुंच गया है। और इसके भीतर कोई न कोई अवश्यही रहता होगा। जो हो, पर देखना चाहिए, क्या होता है। पानी मिलता है,या नहीं। और फिर हमे यहां डर किस बात का है! क्योंकि इस जगह हम किसीसे शत्रुता करने,या किसीको व्यर्थ सताने नहीआए हैं।' इस प्रकार सोच विचार कर युवा आगे बढ़ा और तीस पैंतीस टूटी फूटी सीढ़ी चढ़कर द्वार को जोर से उसने खड़खड़ाया; पर भीतर से कोई न बोला। फिर द्वार को ठोंका, परन्तु फिर भी कोई जवाब नहीं मिला। योंही लगभग आध घंटे तक बराबर उसने किवाड़ खड़खड़ाया और चिल्ला चिल्ला कर पुकारा, पर भीतर से किसीने सांस तक न ली। अंत में युवा ने घबराकर और बड़े जोर से चिल्लाकर कहा,—

"भाई, जो कोई इस स्थान में हो, दयाकर थोड़ा सा जल देकर इस कण्ठागतप्राण बटोही की जान बचावै, यह दैव का मारा अभागा पथिक बिना पानी प्राण दिया चाहता है। है कोई भगवान का

प्यारा, जो थोड़ा सा जल देकर जीवन मोल ले ले।"

इतना कहकर युवा चुप होगया, पर फिर भी कुछ उत्तर न मिला, तब तो वह झुंझलाकर किवाड़ा पीटता हुआ गरजकर बोला,—

"अरे, क्या संसारसे दयाधर्म सब उठ गया, केवल जलदान में भी टोटा पड़ गया क्या। हा! अरे हम यहां पर किसी की कुछ बुराई करने नहीं आए हैं और न हम डाकू लुटेरे हैं, जो मारे डर के कोई जवाब नहीं देता। देखो भाई! अब हमारा कुछ दोष नहीं, यदि अब भी कोई न बोला तो हम किवाड़ तोड़कर भीतर घुस पड़ेंगे और जो आंखों के आगे आया, उसीसे पूछेंगे कि भूले भटके प्यासे बटोही को पानी पिलाना क्या महापाप है!"

युवा ने जब इस प्रकार कड़ककर कहा, तब भीतर से किसीने दबे हुए स्वर से कहा,—

"हे बटोही! हमलोग दईमारी अनाथिनी स्त्री जाति हैं। हमलोग डरती हैं कि कहीं आप हमारे शत्रु तो नहीं हैं! हमलोगोंके पद पद पर विपद खड़ी है, और यह सूनसान मैदान भी बड़ा भयानक है। तिसपर ऐसी तिकाली बेला आप कौन हैं, जो अपनी तलवार खैंचे, चन्द्राकड़ी जलाते हुए, अधजली हमलोगों को जलाने आपहुंचे! ऐसे समय में पशु पक्षी तो डोलते ही नहीं, आपको क्या पड़ी थी जो यहां ऐसी बेला आकर नाहक हमलोगों को धमकाते और जबर्दस्ती किवाड़ तोड़ कर भीतर घुसना चाहते हैं! बतलाइए, आप कौन हैं और क्यो हमलोगों को सताने यहां पधारे हैं।"

इस प्रकार करुणा और भय से मिली बातें सुनकर युवक सन्नाटे में आगया। और छिनभर इन बातों का मर्म सोचता हुआ मन में कहने लगा कि,—" एं? ऐसे स्थान मे ऐसी दुखिया कौन है, जो इस तरह दुष्टोंके हाथ से दुःख पाकर मनुष्यों को जंगली जानवरों से भी भयानक और दुखदाई समझती है। इस स्त्री के रुन्धे हुए गले के करुणा भरे शब्द साफ़ कहे देतेहै कि संसार में कोई ऐसा दुःख नहीं है, जो इस बिचारी के ऊपर न टूट पड़ा हो! तभी यह इतनी डरती, घबराती, चिहुंकती और संकोच करती है कि कौन जाने, कहीं फिर कोई नई आफत न उठानी पड़े! जो हो, परन्तु इस स्थान और यहां के रहनेवाले में निःसंदेह रहस्य कूट कूट कर भरा है, अच्छा देखें, यह भेद क्योंकर प्रगट होता है।"

युवक इतनी देर जो चुपचाप ऊपर कही हुई बातें सोचता रहा और उसने कुछ जवाब न दिया, यह और बुरा हुआ। भीतरवाली स्त्री का सन्देह और भी बढ़ा और उसने कड़ाई के साथ कहा,—

"क्यों जी! आप चुप क्यों होगए! अपना परिचय क्यों नहीं देते! बस बस, मैंने समझ लिया कि कुछ दाल में काला जरूर है! अच्छा अब या तो आप अपना ठीक ठीक परिचय दीजिए, नहीं तो अपनी राह देखिए। यहां ऐसे वैसे भडेरियों के लिये रत्ती भर भी स्थान नहीं है। जाइए, चले जाइए, अपनी राह नापिए और याद रखिए कि यह फाटक आपसे टूटनेवाला नहीं है।"

ऐसी रुखाई का जवाब पाकर हमारे युवा के चित्त की कैसी दशा हुई होगी, यह कहना सहज नहीं है; उसने आतुर होकर कहा,—

"हे भगवन्! यह कैसा तमाशा है!!! हाय! एक थके मारे बटोही की प्यास के मारे जान निकल रही है और किसी के चित्त में तनिक दया नहीं आती कि दो बूंद जल देकर प्राण दान करे। हाय! कैसा अंधेर है! हे सुशीला! हे सती! चाहे तुम कोई हो! चाहे तुम दुष्टों के हाथों से कितनी ही सताई जा चुकी हो, चाहे तुम्हे आठों पहर अपने जानमाल का खतरा बना ही रहता हो, चाहे तुम इस जगह बत्तीस दांतों में जीभ की तरह दबी दबाई छिपकर रहती हो, पर याद रक्खो, हम चाहे कोई क्यों न हों, किन्तु यहां किसी के सताने की इच्छा से नहीं आए हैं। हे भगवन्! जो क्षत्री संतान हैं, जिनके शरीर में एक बूंद भी शुद्ध क्षत्रियरुधिर है, वह अपने बैरियों की स्त्रियों को भी अपमान और कष्ट नहीं पहुंचाते। हे दुखिया स्त्री! हम धर्म की साक्षी देकर कहते है कि यदि तुमलोग हमारी बैरिन भी हो, तो भी इस समय हमसे भय मत करो और यदि हमारी बैरिन न हो तो अब से हमे अपना पूरा हितैषी और शुभचिन्तक समझो। आज से हम अपने प्राण बचानेवाली (पानी पिलाकर) के लिये काम पड़ने पर अपना खून देने को तैयार रहेंगे, बस इससे जादे कहने की अब हमे सामर्थ्य नहीं है। यदि इतने पर हमारा विश्वास हो तो ठीक है, नहीं तो कहो, अब हम बिना जल पीये ही लौट जायं, इसमें प्राण रहे चाहे जाय। कहो, अब क्या कहती हो!"

"अच्छा ठहरिए, खोलती हूं;" यह कहकर उस स्त्री ने द्वार खोला और एकाएक हमारे बटोही युवा को देखकर चौंक उठी। उसने

देखा कि,—' सामने एक बीस बाईस बरस का परम सुंदर योद्धा अंगी सिपाहियों की सी पोशाक पहिरे खड़ा है! मुख कुंदन की तरह दमकता और राजचिन्ह को साफ झलकाए देता है। अंगों के पसीने सूख चले हैं, पर तौभी अभी रास्ते की पूरी थकावट नहीं मिटी है। वह भाले को सीढ़ीपर टेककर उसी पर अपने शरीर का भार देकर खड़ा है। सब कपड़े लोहू के छीटों से चुंदरी होरहे हैं और कई जगह तलवार की हलकी चोट के लगने से अभीतक थोड़ा थोड़ा खून बह रहा है; और जो लोहू ढलक चुका है, सो जम गया है। सामने एक ढाल, दो तलवारें, एक खंजर और एक पिस्तौल, परतले के साथ खोलकर सीढ़ी पर धर दी है और प्यास के चटके के कारण अपना ओठ चाट रहा है।'

यह हम अभी कह आए हैं कि वह स्त्री किवाड़ खोलकर सामने युवा को खड़ा देख चिहुंक उठी थी। वह कई बार युवा को नीचे से ऊपर तक आखें फाड़ फाड़ कर देखने और तरह तरह के सोच विचार करने लगी, उसने चाहा कि झट से द्वार बंद कर चलदे, पर फिर युवा की प्रतिज्ञा स्मरण करके वह रुक गई।

युवा ने भी कई बार उस स्त्री को सिर से पैर तक खूब ध्यान से निरखा और मन में सोचा कि,—'हां न हो, यह हमारी अवस्था, जो कि खून खराबा होने के कारण भयानक होरही है, देखकर सहम गई है। एक तो यह पहिलेही से पुरुषों के नाम से कांपती है, तिसपर हमारे खूनी ठाठ को देखकर इसका इस तरह डरना या घबराना अनुचित नहीं है।'

यह सोच कर युवा ने कोमल और मीठे बचनों में कहा,—" ऐ बड़भागिन! बड़े अचरज की बात है कि आप हमारे कसम खाने और प्रतिज्ञा करने पर भी अभी तक इतना डरती हैं! यह बात सही है कि इस समय हमारे आने, वा यों समझें कि हमारे इस खूनी भेस के देखने से आप डर गई हों; पर नहीं, यह आपका भ्रम है। वह असल क्षत्री कभी नहीं है, जो मुख से एक बार प्रतिज्ञा करके प्राण रहते पलट जाय। इसलिये अब अपने चित्त से डर को दूर कर जलदी जल दीजिए।"

" अरे चीन्हा, चीन्हा, महाराज! ऐं! ठीक! (रुक कर" उन्हीं की सी—" इतना कहते कहते वह स्त्री रुक गई

" महाराज " यह संबोधन सुनकर हमारे युवा की न जाने कैसी दशा हुई कि एकाएक उसके मुख का रंग उड़ गया और माथा पकड़ कर वहीं सीढ़ी पर बैठ गया, और जहां तक होसका, जल्दी अपने को सम्हाल कर उसने उस स्त्री से कहा,—

" ऐं ! आप कौन हैं ? और हमें बिना जाने समझे "महाराज !" कहकर क्यों पुकारती हैं ? "

स्त्री,—" क्यों महाराज ! आप इतना घबरा क्यों गए ? खैर ! यदि मुझसे कोई अपराध भया हो तो क्षमा करिए और सुनिए,— हे प्रभू ! मैं एक तुच्छ दासी हूं, मुझे " आप आप " कहकर आप लज्जित न कीजिए। मैं जैसी अपनी स्वामिनी की दासी हूं, वैसी ही आपकी भी टहलनी हूं। और हां ! अब मुझे इतना तो अवश्य निश्चय होगया कि यदि आप हमलोगों की भलाई न करेंगे तो कभी बुराई भी न करेंगे, आगे बिधाता जानै। आइए, भीतर आइए।"

यह कहती हुई वह स्त्री बगल में होगई और युवा ने गौर गनेस मनाते मनाते चौखट के भीतर पैर रक्खा। ज्योंही युवा ने एक पैर भीतर रख कर सामने देखा, त्योंही उसका रहा सहा धीरज और भी जाता रहा और उसके चित्त की जो कुछ दशा उस समय हुई, वह धीरे धीरे आप ही आप प्रगट हो जायगी।

युवा ने देखा कि, ' सदर दर्वाजे के ठीक सामने, दूसरे द्वार की चौखट धरे, एक पद्रह सोलह बर्ष की परम सुन्दरी सलोनी बाला एकटक इधर ही देख रही है ! ज्योंही दोनों की आखें चार हुई, त्योंही बाला तो सिमट कर हट गई, किन्तु युवा नोचे खसोटे, लुटे मुसाफिर की भांति कलेजा थाम कर वहीं बैठ गया। उस बिचारे बटोही युवा के मन की चाल, जो छिन भर में कड़ोड़ों कोस दूर पहुंची थी, इसे वह स्वयं नहीं समझ सका; परन्तु वह चतुर और चौकस स्त्री, जिसने सदर द्वार खोल कर युवा को भीतर बुलाया था, दोनों की (युवा और बालिका की) आखों के लड़ने का मतलब बखूबी समझ गई; पर उसे उस समय इतना अवकाश न था कि इन जहरीली आंखों की लड़ाई का फैसला करती। परन्तु हा ! इतना तो उसने जरूरही सोचा होगा कि,—'इस लज्जावती बाला की चंचलता और रूपरस के प्यासे युवा की आतुरता जल्दी ही कोई नया रंग दिखलाया चाहती है !'

अच्छा जो होगा, देखा जायगा; पर अभी उन बातों के पकने में देर है, इसलिये वह पचडा अभी हम यहीं पर छोडते हैं।

युवा को मदिर के भीतर बुलाकर उस सावधान स्त्री ने पहिले की भाति सदरद्वार ज्यों का त्यों बद कर दिया।

युवा ने द्वार बंद होने के साथ ही घूम कर पूछा कि "क्यों भई! किवाड़ क्यों भेड़ती हो!"

स्त्री,—(मुसकुरा कर) "छिः! डर लगता है क्या! इतना घबराते क्यों हैं! हथियार तो आपके हाथ में हैं।"

इतना कहती हुई वह विचित्र स्त्री वहासे खसक गई और युवा ने अपने को एक शिवालय के सभामंडप में अकेले पाया। इसके कहने की तो कोई आवश्यकता नहीं है कि युवा ने अपने सब हथियारों को भी अपने साथ लेलिया था, जिन्हें उसने पहिले फाटक के बाहर सीढ़ी पर रक्खा था।

पाठक यह जानना चाहते होंगे कि यह नवयुवक, जिसे द्वार खोलने वाली स्त्री ने महाराज का सम्बोधन दिया, कौन है! और उस भग्न मदिर मे जो दो अवलाएं दीख पड़ीं, जिनमें एक युवती थी और दूसरी षोड़शी; वे कौन थीं? और वह मन्दिर किस स्थान पर अवस्थित था, तथा उस वीर युवक का उस समय रुधिररंजित बीभत्स वेश क्यों था!

किन्तु पाठक धैर्य्य रक्खें, समय आने पर सब रहस्य स्वयं प्रगट हो जायगा और कोई बात छिपी न रह जायगी। हां! अभी तो इन भेदों का रहस्योद्घाटन नहीं होसकता। अतएव जबतक इन लोगों का नाम या परिचय न मालूम हो, हम उस युवक को युवक या युवा कहकर, और उन दोनों स्त्रियों में से युवती को स्त्री या सुन्दरी कहकर, तथा षोड़शीबाला को बाला वा बालिका कहकर लिखेंगे।

दूसरा परिच्छेद.

साक्षात्कार ।

"दृष्टं चेद्वदनं तस्याः किं पद्मेन किमिन्दुना ।"

(कुवलयानन्द)

सुंदरी ने आकर कहा,—

"महाराज! जान पड़ता है कि अभी आपने स्नान नहीं किया है अतएव अब आप प्रथम नित्यकर्म से निश्चिन्त होइए; तब तक मैं भोजन तैयार करती हूं ।"

युवक,—"तुम मुझे बार बार "महाराज" क्यों कहती हो ! भई ! तुम कौन हो और क्यों यहां रहती हो ?"

सुंदरी,—"छिः ! भय लगता है, क्या! आप वीर होकर डरते हैं!"

युवक,—"वाह ! हमारी बात का यही उत्तर है !"

सुंदरी,—"न सही, पर यहां दिन को भी भय लगा रहता है, या यों समझिए कि रात्रि की अपेक्षा यहां दिनही का विशेष भय सम्भव है, अतएव कदाचित आप डरे हों !"

युवक,—"तुम्हारी बातों में अवश्य रहस्य भरा है और यह स्थान भी रहस्य से खाली नहीं है !"

सुंदरी,—"यह ठीक है ।"

युवक,—"यदि कहने से कोई क्षति न हो तो कहो ।"

सुंदरी,—"क्षति है, और भय भी है, अतएव कह नहीं सकती, क्षमा करिए ।"

इतना कहते कहते वह सुन्दरी वहांसे दूसरे घर में चली गई और युवक हताश होकर श्रम दूर करने और इस आश्चर्यमयी घटना के सोचने के लिये वहीं बैठ गया ।

उस युवा के आश्चर्य के येही विषय थे,—मानवशून्य जंगल, उसमें भग्नावशिष्ट मंदिर, वहां केवल दो सुन्दरियों का रहना, हमें "महाराज" सम्बोधन करना, प्रश्न करने पर अपने वृत्तान्त को रहस्यमय स्वीकार करके भी उत्तर न देना, या उत्तर देने में आगा पीछा करना, इत्यादि ।

" क्यों ? " युवा ने सोचा " क्यों ? " पर कुछ फल नहीं हुआ और युवा कुछ भी न समझ कर उसका सोच छोड़ कर मंदिर के इधर उधर देखने लगा। उसने देखा—मंदिर जैसा बाहर से जीर्ण और टूटा फूटा दीख पड़ता था, वह भीतर से वैसा नहीं है! भीतर से वह दृढ़ लाल पत्थरों से बना हुआ था। चारों ओर की दीवार में अनेक देवदेवियों के विचित्र चित्र चित्रित थे। बीच में मन्दिर, उसमें स्फटिकनिर्मित विशाल शिवमूर्त्ति स्थापित थी और उसके बगल में सिंहारूढ़ा गिरिजा देवी की प्रशांत मूर्त्ति स्थापित थी। सन्मुख एक बड़ा सा नन्दी रक्खा था। इसके अतिरिक्त अनेक पत्थर की मूर्त्तियां चारोंओर धरी थीं। भूमि में सफेद पत्थर बिछा था। कहीं पुष्प, कहीं बिल्वपत्र, कहीं धूप, कहीं निर्माल्य और कही और और पूजा के पदार्थ रक्खे थे। ऐसे निर्जन स्थान में इस प्रकार के मन्दिर और उसमें मनमोहिनी शङ्करमूर्त्ति देख कर युवा के चचल चित्त में शांति के संग भक्ति का उदय हुआ। वह विश्वेश्वर के सन्मुख खड़ा हो, हाथ जोड़ कर नाना प्रकार की स्तुति करने लगा। उसके कंठ गदगद, अंग रोमांचित और नेत्र प्रेमाश्रुपूर्ण थे। उसने अपनी स्तुति के अंत में कहा,—

" प्रभो! तुम्हारे ही श्रीचरणों के भरोसे मैं इस गुरुतर कार्य्य में अग्रसर हुआ हूं। नाथ! तुम्हें छोड़ कर विश्व में कोई इस निराश्रय का आश्रय और निःसहाय का सहाय नहीं है; इसलिये प्रभो! जिसमें निज भक्त का उद्धार हो, वही करना।

युवा के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी और कंठ रुँध गया। उसने भक्तिभाव से प्रणाम करके उस घंटे को, जो वहां लटकता था, बजा दिया। फिर युवा की दृष्टि दक्षिण ओर वाली दालान में पड़ी। उसनें देखा कि वही षोडशी बालिका कनखियों से उसे देख रही है। पर युवा की दृष्टि का भार उससे सहा न गया, इसलिये वह बालिका तुरन्त वहांसे अंतर्धान होगई, और युवा ने भग्नहृदय हो कर पीछे फिर कर क्या देखा कि पीछे वही सुंदरी युवती, जिसने द्वार खोला था, हाथ में जलपात्र लिये खड़ी है।

युवती जब जल ले कर आई थी, उस समय युवा स्तुति में लवलीन था; इसलिये उसने युवती का आना नहीं जाना था। युवती भी युवा की स्तुति से सकपका कर चुपचाप खड़ी हो सुनती थी।

युवा ने उसे देख कर कहा,—

"अहा! हमारे आने से आज आपको बहुत कष्ट हुआ। जबतक हमारे प्राण देह में रहेंगे, कृतज्ञता प्रकाश करने के लिये हम ढूंढ़ने पर भी कोई शब्द न पावेंगे। यदि कभी इस अधम शरीर से कुछ भी आपका उपकार होसका तो इस नश्वर देह को हम कृतकृत्य समझेंगे।"

युवती,—"आप मुझसी तुच्छ दासी को बार बार "आप आप" कहकर लज्जित क्यों करते हैं? मेरी इतनी योग्यता नहीं है कि आप जैसे महानुभावों से इस विशेषण की पात्री बनूं।"

युवक,—"तुम्हारी जैसी इच्छा, किन्तु आकार प्रकार और रीति व्यवहार से तो तुम कदापि दासी प्रतीत नहीं होतीं! पश्चात्ताप यही है, कि तुम कुछ अपना हाल कहतीं भी नहीं! अस्तु।

इतना कहकर युवक ने युवती के हाथ से जलपात्र लेकर मुंह हाथ धोया और उसमें से थोड़ा सा जल पान करके कंठ और हृदय को शीतल किया। फिर वह इस कठिन समय मे युवती के उस उपकार के लिये उसे आन्तरिक धन्यवाद देने लगा। क्षणभर के अनन्तर जलपात्र देने के लिये उसने मुंह फेरा तो वहां युवती नहीं दिखाई दी। युवक वहीं जलपात्र रखकर विश्राम का विचार कर रहा था कि उसके कानों में एकाएक अमृतधारा बरसने लगी। युवा ने सुना कि बगलवाली कोठरी में दो स्त्रियां धीरे धीरे कुछ बातें कर रही हैं। युवा ने उत्कंठित होकर उधर ही कान लगाया और इस प्रकार उन दोनों की बातें सुनने लगा,—

एक,—"हां! मुखाकृति और स्वर तो वैसा ही है, पर फिर भी सन्देह है।"

दूसरी,—"सरला! न जाने क्यों, इन्हें देखने से हृदय में दया का सञ्चार होता है।"

एक,—"तुम्हारा दया का शरीर ही है!

दूसरी,—"क्यों, इन्हें भीतर बुलालेने में कोई हानि है?

एक,—"जी चाहे, तुम्हीं वहां जाकर उनसे मिल लो!"

दूसरी,—"दुर! बिचारे धूप, गरमी के सताए, यहां आये हैं। अतिथि की सेवा करनी क्या तेरे धर्मविरुद्ध है! थोडी देर यहां विश्राम करके फिर जहां उनका जी चाहैगा, चले जायंगे। इसमें हानि क्या है?

एक,—"तुम्हारा,बीबी! चित्त बड़ा सरल है, तुम अभीतक संसार की घटनाओं को अच्छी तरह से नहीं जानती। तुम एकाएक बिना विचारे सभी विषय पर अपना निष्कपट स्वभाव प्रकट कर देती हो। संसार में अनेक प्रकार के जीव हैं, इस लिये बिना अच्छी तरह परीक्षा लिये, किसी पर विश्वास कर लेना सर्वनाश का मूल है। उसमें भी जैसी हम लोगों की अवस्था है, उसके अनुसार बड़ी सावधानी से हमलोगों को चलना चाहिए। हां! जो तुम्हारी ऐसी ही लार टपकती हो तो वहीं जाकर उनसे भेंट कर आओ?"

दूसरी,—" चल! दूर हो! आज तुझे क्या होगया है, जो मुझे इस प्रकार छेड़ती है? किसी सज्जन के संग दुर्भाव प्रकट करना क्या मनुष्यता है? जा! जो तेरी इच्छा हो,सो कर !!!"

एक,—"ऐं! आज क्या है, प्यारी! जो तुम मुझसे इस रुखाई से बातें करती हो! देखो नीति में कहा है,—

"बिना जानि दीजै न कहुं, पर नर कों घर बास।"

दूसरी,—"हट! योंही बक रही है,—"

" छिपै न ढांके बसन के, सुरँस फूल की बास॥"

फिर दोनों स्वर ऐसे धीमे होगए कि युवा ने कुछ भी नहीं समझा,पर जो कुछ उसने समझा,उसीसे उसके आश्चर्य की सीमा न रही। युवा उत्कंठा से उधर ही कान लगाए रहा, किन्तु फिर कुछ न सुनाई दिया। तब उसने आपही आप कहा,—

"ऐं! यह कैसी लीला है! ये दोनों सुन्दरी कौन हैं? अहा! इनके स्वर कैसे मीठे हैं! पर दूसरी का स्वर मधुर और सरलता-पूर्ण भावों से भरा है! पहिली सुन्दरी का स्वर भी यद्यपि मीठा था, पर वह युक्तिसङ्गत था। क्या इस स्थान की यही अधिष्ठात्री हैं? परन्तु ऐसा तो प्रतीत नहीं होता! अस्तु जो हो, यद्यपि इनका रहस्य अभी बिदित नहीं हुआ ,पर यह चित्त में निश्चय प्रतीत होता है कि ये किसी दुर्दान्त दुष्ट से अवश्य सताई गई हों!!! क्योंकि ये मनुष्यजाति को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखती हैं। और निर्जन स्थान में अबलाजनों को पर पुरुष से शंकित होना भी उचित ही है। तो क्या इनमे एक परिचारिका है! पर उसमें तो ऐसे लक्षण प्रतीत नहीं होते! और दूसरी क्या उसकी स्वामिनी है! तब सखीभाव क्यों व्यञ्जित होता है! हा! इस समय हमारे चित्त को कैसी दुराशा ने

आ घेरा है !!!"

युवा ने विशेष तर्कवितर्क करने का अवसर नहीं पाया, क्योंकि हाथ में एक तालवृन्त लिये वही सुन्दरी सन्मुख आ उपस्थित हुई।

युवा कुछ कहना चाहता था कि उसने कहा,—" यह स्थान आपके योग्य नहीं है, भीतर चलकर विश्राम करिए ।"

युवक ने हंसकर कहा,—" यही उत्तम है। क्या हम स्थान का अधिकार करने आए हैं, या हमे यहां सदा रहना है, जो उत्तम मध्यम का विचार करें ? थोड़े विश्राम के लिये विशेष आडम्बर क्यों ?"

सुन्दरी,—" क्यों !

युवक,—" सुनो ! तुमने महा अन्याय का कार्य्य किया । '

सुन्दरी,—' कैसा ! मैंने क्या किया ?"

युवक,—"फिर कहती हो,"क्या किया ?" "अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कर्हिचित् ।" सो तुमने हमें स्थान देकर नीति पर कालिमा फेर दी और हम भी एकान्तस्थल में स्त्रियोंके—विशेषकर अपरिचित रमणियों के सङ्ग रहना धर्मविरुद्ध जानकर अब यहांसे प्रस्थान करते हैं।"

यों कहते कहते युवा उठ खड़ा हुआ । सुन्दरी ने समझा कि 'कदाचित ये हमलोगों की बातें सुनकर उदास होकर यहांसे चले जाते हों !' इस बात का पश्चात्ताप करके उसने लज्जा से सिर झुका लियो और ' अब क्या कर्त्तव्य है ?' यह वह सोचने लगी।

इसी अवसर में बगल की कोठरी से एक मधुर मंद हास्यध्वनि युवा के कानों में पहुंची, जिसे सुन उसने दृष्टि फेर कर देखा कि बगल वाली कोठरी की किवाड़ों की ओट में एक षोड़शी बालिका खड़ी, एक टक उसकी ओर सतृष्ण नयनों से देख रही है और मुख को अंचल से ढक कर मुस्कुरा रही है । युवा की दृष्टि से उसकी दृष्टि मिलते ही वह लज्जा से सिमट कर आड़ मे हट गई। युवा ने अभीतक पूर्ण रूप से उस रूपमाधुरी का मनोहर चित्र अपने हृदयपट पर अंकित नहीं किया था, तथापि क्षणसौदामिनी से जो अतुल सुख का अनुभव होता है, उससे यह सुख कहीं बढ़ कर था। युवा स्तम्भित होकर उसी ओर देखने लगा, पर वह चपला को-सी छटा फिर आंखों के आगे चमक कर छिप गई! युवा के नयन-चकोरों के सन्मुख कभी ऐसी रूपछटा आई

थी कि नहीं, इसमें सन्देह है। उसका अंग रोमाञ्चित, कम्पित और घर्माक्त हुआ। युवती इतनी देर तक खड़ी खड़ी कनखियों से ये सब रहस्य देख रही थी, पर युवा ने न जाना कि,—'यह सुंदरी हमसे भी चतुरा है।'

थोड़ी देर के अनन्तर वह बोली,—"आकृति और प्रकृति से आप के महाराज होने में संदेह नहीं है।"

युवक,—"इससे तुम्हें क्या प्रयोजन है ?"

सुन्दरी,—"बहुत कुछ न्याय कराना है।"

युवक,—"निःशंक होकर कहो।"

सुन्दरी,—"सो कुछ विशेष नहीं है, केवल यही कि अपराधी के अपराध की क्षमा है, कि नहीं ?"

युवक,—"विचार करने पर,—है भी, नहीं भी है। अपनी अपनी सीमा में दोनों हैं।"

सुन्दरी,—"तो यह कहिए कि आप जो अपरिचित स्त्रियों में यों घुस आए, इसमें आपका विशेष अपराध है, या मैंने जो दया करके आपको स्थान दिया, इस लिये मेरा !!!"

युवक,—"प्रायः युवाओं का स्वभाव चंचल होता है, इस लिये उनकी बातों पर सहसा स्त्रियों को विश्वास कर के दया दिखाना बड़ी भूल है।"

सुन्दरी,—"और स्त्रीजनों में निःशङ्क घुस आना उतना बुरा नहीं ? धन्य !"

युवक,—"अभी इसके उत्तर देने में हम असमर्थ हैं।"

सुन्दरी,—"तो बिना उत्तर दिए, यहांसे आपका जाना धर्म-विरुद्ध होगा।"

यह सुन, युवक सन्नाटे में आकर वहीं खड़ा रह गया। युवती ने सोचा कि, 'ये वीरवेश में होने पर भी शृङ्गार के आगार हैं, पर यहां इनका आना भी निष्प्रयोजन नहीं है। अस्तु देखा जायगा।'

फिर उसने निर्भय होकर कहा,—"आप इतने चंचल क्यों हो रहे हैं ? मैं आपको चीन्हती हूं।'

यों कहकर युवती हसने लगी। उसका यह वाक्य मानों सर्प-दंशन से भी गुरुतर युवा को जान पड़ा। उसके मुख का रङ्ग फीका पड़ गया। वह खड़ा था, पर धम से पृथ्वी पर बैठ कर युवती के

मुख की ओर देखने लगा।

सुन्दरी ने उसके हृदय के भाव को समझकर उसका चरण पकड़ कर कहा,—"महाराज! दासी के अपराध को क्षमा करिए। आप कुछ शका न करें, हमलोग आपको बैरिन नहीं हैं।"

युवक,—"तुम कौन हो? कहो, हमसे भी कभी अपनी बुराई की आशा न करना।"

सुन्दरी,—"महाराज! यह आपके दर्शनमात्र ही से मुझे निश्चय होगया है, परन्तु———"

युवक,—"परन्तु क्या?"

सुन्दरी,—"एक अनुरोध है।"

युवक,—"कहो!"

सुन्दरी,—"आप फिर आगामी पूर्णिमा को यहां पधारेंगे?"

युवक,—"यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है, तो हम आवेंगे।"

सुन्दरी,—"तब मैं अपना पूरा परिचय आपको दूंगी।"

युवक,—"अच्छा, बताओ तो हम कौन हैं!"

सुन्दरी,—"महाराज!"

इतना कहकर युवती ने कुछ युवा के कानों में कहा, जिस से युवा ने चकित होकर उसकी ओर देखा।

फिर सुन्दरी ने कहा,—"अभी हमारे और आपके अपराध का निर्णय तीसरे व्यक्ति के ऊपर रहा।"

युवा हंसने लगा, और सुन्दरी ने क्षणभर के अनन्तर फिर कहा,—"अच्छा, अब चल कर स्नानाह्निक करिए, तीसरा पहर होगया। फिर विश्राम करिएगा। और चोट पर पट्टी बांधिए।"

युवा ने युवती के बचनों का उत्तर न देकर दृष्टि फेरी तो उसी द्वार पर पुनः आशालता की सजीव छबि दिखाई दी, पर वह क्षण भर में पुनः अंतर्हित होगई। युवक सहस्र अनिच्छा रहने पर भी मंत्रमुग्ध सर्प की भांति युवती के पीछे पीछे दूसरे घर में गया। स्नानाह्निक, पुनः भोजन, इतने में संध्या होगई। युवा ने बहुत चाहा कि प्रस्थान करें, पर उस सुन्दरी के अनुरोध से उसे वहीं रात्रि व्यतीत करनी पड़ी। किन्तु हा! उसे अपने निराश्रय अश्व की सुधि न रही। घाव पर पट्टी बांधी गई थी।"

तीसरा परिच्छेद

मिलाप।

"क भोगमाप्नोति न भाग्यभाग् जनः॥"

(सुभाषित)

प्रणय की अद्वितीय महिमा है। संसार में जिस सहृदय का हृदयक्षेत्र प्रणयबीज से अंकुरित नहीं है, वह मरुभूमि से क्या कम है! प्रणय जाति, कुल, धर्म्म और समाज देख कर नहीं होता। अज्ञातकुलशील व्यक्ति के परस्पर साक्षात ही से यह हृदय में उदय हो आता है, इसलिये इसे चुंबक मणि से कम न समझना चाहिए। जिसने कभी आँखों से हीरा नहीं देखा है और न उसका मूल्यही जानता है, क्या एकाएक हीरा देख कर वह मोहित नहीं होता? यद्यपि उसका मूल्य और गुण वह नहीं जानता, तथापि हीरे की उज्वलता और शोभा अवश्य देखनेवाले के मन को आकर्षित करती है। जो सोने को नहीं जानता, वही यदि किसी के अंगों पर सुवर्ण का आभूषण देखे तो उसका मन सोने की शोभा से क्या नहीं आकृष्ट होगा? तब प्रणय क्या वस्तु है, इसे यदि कोई बाल्यावस्था में न भी जानै, तौ भी उपयुक्त समय आने पर उसे अवश्य जानता है। उपयोगी वस्तु के मिलने ही पर प्रणय का अंकुर हृदयक्षेत्र में उत्पन्न होता है। इसे समझाना व्यर्थ है, क्योंकि प्रणय प्राकृतिक घटना का मूल है। यह किसी की इच्छा से नहीं होता, और न किसी के मना करने से रुकता है। यह अपनी अनिवार्य्य गति से स्त्री-पुरुष को चलायमान करता है। यह कहना अयौक्तिक नहीं है कि संसार प्रणय का दास है। जगदीश्वर ही स्त्री-पुरुष के हृदयक्षेत्र में प्रणयबीज वपन करता है. जिसके द्वारा संसार का धाराप्रवाह बराबर चला जाता है। जैसे शीत के बीतने पर बसंत का उदय होतेही वृक्षराजि फल और पुष्पों से सुशोभित होती है, वैसेही बाल्यवयस के व्यतीत होते ही प्रणय का बीज मनुष्य के हृदय में आप ही आप आरोपित होता है।

ग्रीष्म काल, निशीथ का समय, चन्द्रमा मध्य गगन में अपनी अखंड कौमुदी से पृथ्वी को प्रकाशित कर रहे थे। संसार के सभी जीव उस सुख का अनुभव करके स्वच्छद विश्राम करते थे। वसंतानिल शीतल, मंद और सुगंध लिये, बहती, और जीवों का सुख संपादन करती था। मंदिर के भीतर एक लंबी चौड़ी छत थी, उस पर सुथरी शैय्या पर हमारे पूर्वपरिचित युवक सुखपूर्वक निद्रादेवी की आराधना करते थे। संसार निस्तब्ध और शांति के राज्य का सुख अनुभव करता था। शैय्या के पास एक षोडशी बाला खड़ी खड़ी युवा के मुख की शोभा देखती, कभी हँसती, कभी रोती, कभी दीर्घनिश्वास त्याग करती और कभी कुछ गुनगुनाती जाती थी।

इसी थोड़े से समय में जो बालिका के हृदय का इतना परिवर्तन हुआ, वीरपुरुष के दर्शनमात्र ही से जो उसने आत्मसमर्पण किया, यह क्या विचार में आसकता है? पहले बालिका कुहूरव, भ्रमरझंकार और चन्द्रिका का जैसा सुख अनुभव करती थी, इस समय ठीक उसके विपरीत था। कवियों के मत से कुहूरव, भ्रमरझंकार, चांदनी और मलयवायु विरहिणी के शत्रु हैं। यद्यपि संयोगी के पक्ष में ये आनंददायो हैं, पर विरही के लिये नहीं। विरहीजनों के हृदय में जो अभाव है, उसके पूर्ण हुए बिना ये सब उसे शत्रुवत् प्रतीत होते हैं।

तो क्या, सचमुच उस बाला ने अनजाने पथिक को अपना सर्वस्व समर्पण किया? क्यों? इसका क्या परिणाम होगा? अस्तु जो हो, विधि की अखडनीय गति है, इसमें बालिक और युवक का दोष क्या है?

एक चौकीपर बालिका बैठ कर युवा के मुखपर पंखा झलने लगी। उसकी आंखों से बूंद बूंद आंसू टपकने लगे। अहा! सरल-हृदया बालिका का जैसा कोमलतापूर्ण हृदय था, वैसीही सरलतामय उसकी आकृति भी थी। स्त्रीजाति माया की आधार होती हैं। सरला बालिकाजनों के न रहने से यह शोभापूर्ण जगत अब तक मरुभूमि होगया होता! यदि इस विषय में पाठक-पाठिकागण भुक्तभोगी हों तो अबला के हृदय का भाव समझलें। करुणामयी सरला बालिका के कोमल हस्त की मृदुमंदानिल से युवा का सर्वाङ्ग कंटकित हुआ। रात्रि के तीन बज गए होंगे, उस समय युवा की आंख खुली। उसने आंख खोलकर देखा कि,—'शैया के

समीप कोमल कर में व्यजन लिये पूर्वपरिचित बालिका चौकीपर बैठी है। वह बार बार अञ्चल से नयन पोंछती और ठंढी सांस लेती जाती है। ' देखते ही युवा के मन में भावान्तर हुआ। उसने मन में प्रतिज्ञा की कि,—'इस रत्न के अतिरिक्त और किसीको कभी अपने हृदय में धारण नहीं करेंगे।'

ऐं! यह क्यों? यह प्रणय की आकर्षणशक्ति!!! जो प्रणय एकाङ्गी होता है, वह वस्तुतः प्रणय नहीं है; बरन प्रणयाभासमात्र है। युवा की आंखों से आंखें मिलते ही लज्जावनतमुखी अबला संकुचित होगई। वह चाहती थी कि उठकर वहासे चलदे, किन्तु गति ने उस समय उसका अनुरोध नहीं माना। युवा शैय्या पर उठ कर बैठ गया। दोनो प्रणयी का हृदय धड़कने लगा। सूना स्थान होने से नवप्रणयी को महाविभीषिका सताती है। इस संसार में किसीकी भी ऐसी सामर्थ्य नहीं है, कि नवसमागम में नवप्रणय से अंकुरित हृदय न कांपे।

युवा ने हृदय के बेग को रोक कर मृदुस्वर से कहा,—"सुंदरी! तुमने शयन नहीं किया? तुम कबसे यहा बैठी हो?"

परंतु बालिका चुपरही। उसका उत्तर न पाकर युवा ने फिर कहा,—"क्या हमारा ऐसा मंदभाग्य है कि तुम्हारी दो बातें सुनने का भी अधिकारी नही है? ऐं! तुम क्या हमें पंखा झलती थीं? हाय———"

युवा चुप होगया। उसका हृदय भीतर से उमड़ आया। उसके हृदय के भाव को समझकर अतिक्षीण स्वर से बालिका ने कहा,—"महाराज! आप अतिथि हैं। आपकी सेवा करना हमलोगों का धर्म है।"

इससे अधिक वह कुछ न कह सकी, क्योंकि उसका कण्ठ लज्जा से रुक गया।

युवा,—"तुम्हारी दूसरी संगिनी कहां है?"

बाला,—"दूसरे घर में।"

युवा,—"तुम अपना परिचय न दोगी? क्या हमसे भी भय है? हम कैसे चीरकर अपना हृदय तुम्हें दिखावें?"

बाला,—"महाराज! मैं अवश्य परिचय देती, पर विश्वासघात करना क्या पाप नही है?"

युवा,—"अच्छा यह तो बतलाओ कि तुम यहां कितने दिनों से रहती हो?"

बाला,—"महाराज! यह क्या परिचय के बाहर की बात है? आप क्षमा करिए, समय आवेगा तो सब मालूम होजायगा।"

युवा बालिका की कोमल बातों से परास्त होकर कुछ देरतक चुप रहा, फिर उसने दूसरी बात छेड़दी, कहा,—"प्रातःकाल हम यहांसे चले जायगे। क्या तुम कभी कभी हमें याद करोगी?"

यह सुन बालिका लज्जित होकर कुछ न बोली, पर उसने इस बात का मन में यों उत्तर दिया,—"मैने अपने मानसमंदिर में तुम्हारी प्रतिष्ठा की है। अब संसार में इस आसन का अधिकारी दूसरा कभी नहीं हो सकता।"

इसके अनंतर उसने दीर्घनिश्वास लिया। यह देख युवा ने कहा,—"क्या तुम्हारे नाम से भी हमारा हृदय शीतल और कान पवित्र नहीं होगा!"

किन्तु बालिका लज्जा से कुछ न बोली। यह देख कर युवा शैय्या पर खड़ा होकर और दोनो बाहु ऊपर उठा कर बोला,—"हे दयामय जगदीश्वर! तुम साक्षी रहना, इस सुन्दरी का उपकार छोड़कर हमसे अपकार कभी न होगा।"

यों कहकर उसने बालिका की ओर देखा और कहा,—"क्यों! अब भी संदेह बाकी है?"

बाला,—"नहीं! संदेह पहिले भी नहीं था, पर आप यदि ऐसे ही आतुर हों तो थोड़ासा कहूं?"

युवा ने मानों आकाश का चांद पाया, आतुर होकर कहा,—"जो इच्छा हो सो कहो।"

बाला,—"मेरी माता दूसरी जगह रहती हैं, और मैं इस सखी के संग यहाँ रहती हूं। बीच बीच में कभी मां आती हैं और कभी मैं मां से मिलने जाती हूं।"

युवक,—"अच्छा, यहां तुम्हारी रखवाली कौन करता है?"

बाला,—"सखी, और एक वृद्ध महंत हैं। वे इसी मन्दिर के भीतर रहते हैं।"

युवक,—"आज हमने तो उन्हें नहीं देखा!"

बाला,—"वे कहीं गए होंगे।"

युवक,—" क्या तुम्हारा आदि निवास यहीं है ? "

बाला,—" नहीं ! दो वर्ष से मैं यहाँ रहती हूं, पर अब अधिक दिन यहां न रहूंगी । "

कहते कहते बालिका रुक गई, उसका भाव समझ कर युवा ने हंस कर कहा,—" किन्तु सुन्दरी ! इस विषय के कहने में क्या तुमने विश्वासघात नहीं किया ? "

यह सुन बालिका घबरा कर रोने लगी, तब युवा ने अपने दुपट्टे से उसका आंसू पोंछकर कहा,—" एँ ! यह क्या ! छिः ! रोती क्यों हो ? "

बाला,—" महाराज ! मेरा हृदय चंचल होरहा है, इसलिये इसने जो अन्याय किया, सो आपके कहने से; इसलिये इस दोष के भागी आप हैं । "

कहते कहते वह रुक गई, और उसके मुख पर हंसी छा गई ।

युवा ने हर्षित होकर कहा,—" हमने दोष स्वीकार किया ! "

इतना कहकर और उस रसला बालिका के कोमल कर को धर कर उसने अपनी अंगूठी उसकी अगुली में पहिरा दी । उसे देखकर बालिका का हृदय कांपने लगा । वह उसे उतारने लगी, तो युवा ने कहा,—" यदि इसे न लोगी तो जानेंगे कि तुम हमें कभी याद न करोगी; क्योंकि इसे देखकर तुम्हें हमारा स्मरण बना रहेगा । "

बालिका,—" तो आप भी मुझे स्मरण करेंगे ? "

इतना कहकर बड़ी कठिनता से उसने अपनी अगूठी युवा की ओर फेंक दी । युवा ने चांदनी में अंगूठी पर खुदे हुए नाम को पढ़ आनंदित होकर कहा,—" तुम्हारा नाम मल्लिका है ? "

बाला,—" यह आपने कैसे जाना ? "

युवक,—" इस पर लिखा है । "

बाला,—" तो आपका नाम भी मुद्रिका पर है, महाराज ! आपही नरेन्द्र——"

युवक,—" नहीं, हमें यह राजा से मिली है । "

बाला,—" तो यह भी मुझे रानी से मिली है । "

युवा ने हंसकर बालिका को कंठ से लगाया । वह लज्जा से संकुचित होकर हट गई । इतनेही में पूर्वपरिचिता सुन्दरी युवती वहां आगई । उसे देखकर दोनों लज्जित हुए ।

युवती,—" महाराज! प्रातःकाल हुआ। कहिए, रात आनन्द से कटी, तो?"

युवक,—" जहां तुम जैसी आनंद देनेवाली हो, वहां आनंद की क्या कमी है?"

सुंदरी,—" सखी ने आपका आदर-सत्कार उत्तम किया न!"

युवक,—" जैसी सरस तुम हो, तुम्हारी सखी तुमसे भी अधिक है।"

यह सुन बालिका लज्जित होकर वहांसे भाग गई।

युवती ने कहा,—" महाराज! यदि आज्ञा हो तो कुछ पूछूं।"

युवक,—" तुम जो चाहो, सो पूछलो, और अपना परिचय न दो; क्या यही न्याय है!"

सुंदरी,—" स्त्रीजाति न्याय क्या जानै!"

युवक,—" तो कैसे व्यवहार चलेगा?"

सुंदरी,—" शान्त होइए, फिर भेंट होने पर मैं सब रहस्य कहूंगी। कहती अभी, पर क्या करू, पराधीन हूं।"

युवक,—" तो अपना नाम तो बताओ।"

सुंदरी,—" इसमें क्षति क्या है! दासी को सब कोई 'सरला' कहते हैं।"

युवक,—" यथार्थ कहते हैं, यथा नाम तथा गुण!!!"

सरला,—" महाराज! आपने किसी सुन्दरी से विवाह किया है?"

युवक,—" किया है।"

इतना सुनते ही सरला धम्म से पृथ्वी में बैठ गई, सहस्र वृश्चिक-दंशन से बढ़कर उसको दुःख हुआ और उसकी मुखाकृति बदल गई।

उसका भाव समझकर युवा ने कहा,—"सरला! तुम घबराती क्यों हो? हमारा विवाह तो तुम्हारे सामने हुआ है!"

सरला,—" आपको शपथ है, सच कहिए।"

युवक,—" सचही कहते हैं। एक अज्ञातकुलशीला बाला के हाथ में हमने आत्मसमर्पण किया है।"

सरला,—" कब?"

युवक,—" इसी निशीथ में।"

यह सुन सरला समझ गई और शीघ्रता से उठकर उसने युवा का हाथ थाम लिया और झटकार कर बोली,—" तो मेरा पारितोषिक कहां है ? "

युवक ने,—" यह लो;—" यों कह और दो मोती की माला उसे देकर कहा,—"एक तुम्हारी और एक तुम्हारी सखी की है ।"

सरला,—" महाराज ! आप सखी को बहुत चाहते हैं ?"

युवक,—" उसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे पास नहीं है । "

यह सुन सरला महा आनंदित हुई । उसने हंस कर कहा,—"महाराज ! आप नरेश हैं, इस लिये इस कन्या पर आपका प्रेम क्या बराबर बना रहैगा ? "

युवक,—"इस वचन से बढ़ कर बज्र में भी शैल के विदारण की क्षमता नहीं है ! "

सरला,—"तो मेरी सखी को सदा स्मरण रखिएगा, यही प्रार्थना है ! "

युवक,—"क्यों कटे पर नोन छिड़कती हो ! क्या हृदय चीर कर दिखावैं ? वहां देखोगी कि तुम्हारी सखी विराज रही है ।"

सरला,—"बहुत हुआ, महाराज ! आप देवता हैं और भाग्यवान् भी हैं । "

युवक,—"कैसे ? "

सरला,—"आपने जिसे ग्रहण किया है, वह आपके योग्य असाधारण रत्न है । "

युवक,—"क्यों कर ? "

सरला,—"आगामि पूर्णिमा को निवेदन करूंगी ! "

इतना कहकर सरला चली गई । युवक हाथ मुंह धोकर अपना वेशविन्यास करके चलने के लिये तैयार हुए ।

इतने ही में मल्लिका लज्जा भरे भावों से सन्मुख आकर बोली,—"फिर तुम आओगे न ? "

"अवश्य" कहकर युवा ने उसका कपोल चुम्बन किया । वह लज्जित होकर संकुचित होगई और युवा ने सहस्र अनिच्छा रहने पर भी वहांसे प्रस्थान किया । द्वार पर सरला मिली । उससे पुनः आने की प्रतिज्ञा कर और भवानीपति को प्रणाम कर के युवक अश्व की खोज में चले ! वह बिचारा अपने स्वामी की सेवा के

लिये वहीं वृक्ष के नीचे खड़ा था, सो युवा को देखते ही उछल पड़ा। युवा उस पर सवार होकर चला। उस समय उसके मन में वर्त्तमान आश्चर्य्यघटना एक एक करके उदय होने लगी।

पाठक, इतना समझ गए होंगे कि जिसने द्वार खोलकर युवक को भीतर बुलाया था, उस सुन्दरी का नाम सरला था, और युवक की हृदयहारिणी का नाम मल्लिका।

युवक के प्रस्थान करने के पांच घंटे बाद उसी झाड़ी में से, जिसके बाहर युवक का घोड़ा खड़ा हुआ था, एक कद्दावर जवान बाहर निकल आया और इधर उधर देख, तथा उस मंदिर के सदर द्वार को ध्यानपूर्वक देख-भालकर मूंछों पर ताव देता और यों कहता हुआ, वह फिर उसी झाड़ी में घुस गया कि,—"अलहम्द लिल्लाह! अब तो मेरे पौबारह हैं! नव्वाब साहब जिस परीपैकर की खोज एक मुद्दत से कर रहे हैं, उसका पता मैं आज आख़िर पाही गया! बस, अब क्या पूछना है! नव्वाब साहब से जब खूब इनाम लेलूंगा, तब इस नाज़नी का पता बताऊंगा। लेकिन वाह, नरेन्द्र भी कैसा बहादुर है कि जिसने बात की बात में कासिम जैसे बहादुर को मार गिराया! वल्लाह, मैं तो सिर्फ नरेन्द्र की खोज में इत्तिफ़ाकिया, इधर आ निकला था और इसके घोड़े को यहां देख, झाड़ी में छिप गया था; मगर खुदा के फ़ज़ल से नरेन्द्र के अलावे आज उस गुलबदन का सूराग भी मैं पागया, जिसके लिये नव्वाब साहब एक सायत से दीवाने होरहे हैं!"

इसके बाद वह झाड़ी में से अपने घोड़े को बाहर लेआया और उसपर सवार होकर एक ओर को रवाना होगया। उसके जातेही एक और शख़्स उसी झाड़ी मे से निकला और इधर उधर देख एक ओर चला गया। यहां पर यह कह देना हम मुनासिब समझते हैं कि इन दोनों में से पहिला व्यक्ति यवन और दूसरा हिन्दू प्रतीत होता था।

चौथा परिच्छेद.

हरण।

" संगमविरहवितर्के वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः। "

(सुभाषित)

उपयुक्त अवस्था में नरनारी के हृदय में जो अभाव उपस्थित होता है, वह कितनी दृढ़ता धारण करता है, यह कहना दुष्कर है। उसी अभाव का नाम बिरह है। बिरह केवल नारी के हृदय में ही यातना उत्पन्न करता है, ऐसा नही है; वह नर को भी विषम यातना देता है।

जिस समय विश्वसंहारक शंकर की हृदयाह्लादिनी ने दक्षयज्ञ में अपना शरीर भस्म कर दिया था, उस समय महादेवजी अपना हृदय शून्य देखकर उस यातना में सती के मृत देह को आलिंगन करके भी उस शून्यता को पूर्ण नहीं कर सके थे। बस इसी अवस्था का नाम विरह है।

विरह कुछ सामान्य व्याधि नहीं है, इसकी न औषधि है और न उपाय है। तात्पर्य यह कि नायक वा नायिका अभिलषित वस्तु के न पाने ही से पीड़ित और पाने से शांत होते हैं।

हमारी परिचिता सरलहृदया मल्लिका को भी यही अभाव उपस्थित हुआ। मल्लिका ने महाराज नरेन्द्र को छोड़कर किसी दूसरे बीर की प्रतिमूर्त्ति को हृदय में पहले स्थान नहीं दिया था। यह उसी कमनीय मूर्त्ति का ध्यान करके अत्यन्त कातर होने लगी। उस समय आशा ही केवल उस अभाव के पूर्ण होने का भरोसा देकर उसे कुछ शान्त करती थी।

"एक सप्ताह व्यतीत होगया, अभीतक महाराज नहीं आए, आजही पूर्णिमा है। क्या दासीपर दया करके फिर दर्शन देंगे? मेरा क्या ऐसा भाग्य है कि रानी बनूंगी?"

इस प्रकार की चिन्ता मल्लिका बराबर करती, और सूने घर में बैठी बैठी आंसू बहाया करती थी। जिसने दस दिन पहिले मल्लिका की स्वर्गीय रूपराशि देखी होगी, वह एक सप्ताह के अनंतर

आज उसी मल्लिका—कुम्हिलाई हुई मल्लिका को कभी नहीं चीन्ह सकेगा। अहा! सरला बाला ने यह क्या किया? क्यों अपने कंचन से शरीर को मिट्टी कर दिया? बस, विधिर्बलीयान्! मल्लिका चिंता में डूबी थी, उसी अवसर में वहां सरला पहुंची। मल्लिका बार बार राजा की दी हुई अंगूठी और मोती की माला को देखती और बार बार उसका चुम्बन करती थी।

वह इतनी उनमनी होरही थी कि उसे सरला का आना नहीं जान पड़ा। सरला ने मल्लिका की दशा देखकर न जाने क्यों एक ठंढी सांस भरी और कहा,—"सखी मल्लिका! तुम इतनी अधीर क्यों होती हो? प्यारी! ऐसा करने से कष्ट के अलावे और क्या होगा?"

मल्लिका इतनी बिचार मे डूबी हुई थी कि उसके कानों में सरला की सरलध्वनि नहीं गई। यह जानकर सरला ने उसके पास बैठकर उसकी ठोढ़ी धरकर आदर से कहा,—"मल्लिका! क्यों अधीर होती हो? आज तो महाराज के आने की बात है न?"

मल्लिका चिहुंक उठी, उसने सामनेही सरला को देखकर अपने मन के भाव को छिपाने का अवसर न जान लज्जित होकर कहा,—"सरला! मां अच्छी हैं? तू कब आई?"

सरला ने ठण्ढी सांस भरकर कहा,—"वे अच्छी हैं, मैं अभी तो चली आती हूं।"

मल्लिका,—"मां ने क्या कहा?"

यों कह कर वह लज्जा से सिमट गई; तब सरला ने कहा,—"अभी तक मां नहीं समझतीं, पर अब बिशेष बिलम्ब नहीं है; मैं आज ही सब ठीक करूंगी।"

मल्लिका,—"बिना मा की आज्ञा के!"

इससे अधिक, लज्जा से मल्लिका कुछ कह नहीं सकी। सरला कुछ कहा चाहती थी, कि बाहर महा कोलाहल आरंभ हुआ, वह आश्चर्य्यित हो इधर उधर देखने लगी। इतने ही में एक वृद्ध ने आकर कहा,—"सरला! सर्वनाश!!!"

सरला,—(घबरा कर) "भट्टाचार्य्य महाशय! यह क्या है?"

भट्टाचार्य्य,—"सर्वनाश! यवनों ने तुम्हारा पता लगाकर इस मन्दिर को घेर लिया है। अब बचने की कोई आशा नहीं है।"

यों कहकर भट्टाचार्य ऊर्द्ध श्वास से भाग गए। इतने ही में वहां

यमदूत-सरीखे दस-बारह यवन आ पहुंचे । उन्हें देखकर मल्लिका मूर्च्छित होगई । यद्यपि सरला चैतन्य थी, पर उसे भी अधमरी ही कहना चाहिए । दोनों सुन्दरियों को देखकर मुसलमान आनन्द से कूदने लगे; और दोनो को बांध, पालकी में डाल कर वहांसे चल दिए । सन्ध्या होने में बहुत देर न थी ।

वे सब मुसलमान, जो गिनती में पचास से कम न होंगे, घोड़े पर सवार हो, चारों ओर से पालकी को घेर कर चलने लगे । पालकी के आगे आगे बड़ी शानोशौकत से जो मुसलमान सब्ज़े घोड़े पर सवार था, वही इस गरोह का सर्दार मालूम देता था । उसका नाम उसमान था; और उसके बगल में, ज़रा पीछे को दबा हुआ जो नौजवान मुसलमान सफ़ेद घोड़े पर सवार था, वह उसमान का मुसाहब था । उसका नाम रहीम था ।

रहीम ने उसमान से कहा,—"क्यों हज़रत ! नव्वाबसाहब तो सिर्फ़ मलका (मल्लिका) के ख़्वाहां हैं, फिर आप उसके साथ एक दूसरी नाज़नी को किस ग़रज़ से लिए जाते हैं ?"

उसमान,—(मुस्कुराकर) "क्या, इसका सबब मियां रहीमख़ां को बतलाना होगा ! ख़ैर सुनो, इस दूसरी औरत को मैं अपनी बीबी बनाऊंगा । इस ग़रज़ से कि जब मलका (मल्लिका) के दाम में नव्वाबसाहब पूरे तौर से फ़ंस जायंगे, तो इस औरत के ज़रिए मैं अपना बड़ा काम निकालूंगा; क्योंकि इस औरत के साथ मलका (मल्लिका) की निहायत दोस्ती है ।"

निदान, वे सब तेज़ी के साथ बढ़ते हुए चले गए । पाठक ! यह उसमान ही युवा (नरेन्द्र) के जाने के बाद झाड़ी से निकला था । यह सारा बखेड़ा इसी दुष्ट का था । सो जब वे सब तेज़ी के साथ बढ़ने लगे तो उनके पीछे पीछे, वही अजनबी भी जाने लगा, जो उसमान के बाद उस दिन झाड़ी के अंदर से निकला था ।

पांचवां परिच्छेद.

बंधुद्वय ।

"माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्त्रितयं हितम् ।
मातुः पितुः परं मित्रं यद्वचः परमं हितम् ॥ "

(मित्रविलास)

मध्याह्न के समय वनस्थली के मार्ग से थोड़ा सैन्यदल चला जाता था । उसके आगे दो युवक अश्व पर आरूढ़ होकर परस्पर बातें करते करते चले जाते थे। जिनमें एक महाराज थे, दूसरे मन्त्री ।

एक,—"सखे ! पठानों के उपद्रव से बन के मार्ग से गमन करना युक्तिसंगत हुआ । "

दूसरा,—"मैने भी यही अनुमति दी थी। विशेष कर ग्रीष्मऋतु में सूर्य्योत्ताप से बचने के लिये यह मार्ग बहुत अच्छा है ! "

एक,—"किन्तु जब तक हम लोग अपने लक्ष्य स्थान पर न पहुंच जायं, तब तक अपने को निर्विघ्न नहीं समझना चाहिए। आज कल पद-पद पर विपद है । "

दूसरा,—" ठीक है, पर सावधानी से एकाएक विघ्न के पाले नहीं पड़ना पड़ता ।"

अनंतर दोनों घोड़ा फेंकते हुए चले जाते थे । पीछे पीछे सैन्यदल श्रेणीबद्ध चला जाता था । सेना के कोलाहल से पशुकुल प्राणभय से इधर उधर दौड़ने लगे और पक्षिशावक प्राणसंहारी व्याधे के भय से तरुकोटरों से मुख निकाल निकाल कर उनकी ओर देखने और अपनी भयविह्वलता प्रकट करने लगे । एक प्रकार वन्यजीवों में महा हलचल उपस्थित हुई, चारों ओर अशान्ति फैल गई और कलरव से वनस्थली गूंज उठी ।

इसी अवसर में एक सुन्दर मृगशावक महाराज के सन्मुख दिखाई दिया । यह हम कह आए हैं कि इन दो बन्धुओं में से एक महाराज थे, और दूसरे मंत्री ।

मृगछौने को देखते ही महा मुदित होकर महाराज ने उसके पीछे घोड़ा दौड़ाया और इंगित पाकर मंत्री ने भी उनका अनुसरण

किया। सैन्यदल ने भी पीछा किया, पर वह, न पहुंच कर लाचार हो धीरे धीरे बढ़ने लगा।

क्षण काल के अनंतर महाराज ने सैन्यसमूह को वहीं विश्राम के अर्थ आज्ञा देकर मंत्री के संग मृग का पीछा किया और प्रायः उसे लक्ष्य करके पहर भर तक वनाद्वनान्तर चले गए। दस-बारह कोस तक जाने पर एकाएक मृगशावक गिरिदरी में प्रविष्ट होकर अंतर्धान होगया और इस अद्भुत व्यापार से बंधुद्वय भग्नहृदय होकर स्तंभित हुए।

किसी कार्य्य को लक्ष्य करके जी-जान से श्रम करने पर भी यदि मनोरथ पूर्ण नहीं होता तो सौगुना श्रम अनुभव होकर हृदय को शिथिल कर देता है; और यदि अनन्त परिश्रम से भी कृतकार्य्यता प्राप्त होती है तो श्रम का अणुमात्र खेद नहीं होता; अतएव दोनों युवकों की दशा बड़ी शोचनीय होगई। उनके मुख और नेत्र लाल होगए थे, सर्वाङ्ग से प्रस्वेदकण टपकने लगे थे, मुख शुष्क और हृदय धड़कता था और श्रमबाहुल्य से प्रत्यंग शिथिल और भारमात्र बोध होता था। अश्व की भी वही दशा थी, किन्तु विशेषता इतनी थी कि वह अत्यंत थक कर बारबार जीभ बाहर निकालता और मुख से फेन फेंकता था।

हताश होकर दोनों ने अश्व से उतर कर इधर उधर देख अश्व को एक जलाशय के किनारे लाकर जलपान कराया और घास चरने के लिये समीपही छोड़ दिया।

अनंतर दोनो हाथमुख प्रक्षालन करके जलपान कर कुछ स्वस्थ हुए।

महाराज,—"भाई! आज महा विपद् उपस्थित हुई। इस मृग ने बड़ा धोखा दिया!"

मंत्री,—"मित्र! इसमें आश्चर्य क्या है! यह ऐसी भयंकर जाति है कि इसने साक्षात् अवधेशराज को भी प्रतारित किया था। इन दुष्टों से जो असंख्य वीरों ने धोखा खाया होगा, इसमें आश्चर्य क्या है?"

महाराज,—"किन्तु आश्चर्य यही है, कि जान बूझकर भी लोग इसके जाल में पतित होते हैं!"

मंत्री,—"अस्तु, जो हुआ सो हुआ, अब किसी प्रकार इस वन से परित्राण पाते ही सब संशय दूर कर के निज कार्य्य में लगेंगे।"

महाराज,-"हहह!!! किसलिये जाते थे और क्या होगया! ईश्वरेच्छा।

धीरेधीरे संध्यादेवी ज्योत्स्नाभिसारिका बनकर दिखाई दीं।

सूर्य्यनारायण अधिक यात्रा के श्रम से परिश्रान्त होकर रात्रियापन के लिये अस्ताचल के ऊपर शयनमंदिर में पधारे। उनकी हृदयहारिणी सरोजिनी प्राणपति के वियोग में अतिशय कातर होकर दिननाथ के नैशवियोग को न सह सकी। उसने एकबार उन्नत मुख करके करुण कटाक्ष किया, पर 'प्रानप्यारे न फिरे' यह देखकर वह मान और लज्जा से संकुचित होगई। इधर कुमुदिनी दिनभर के वियोग में महामलिन हो रही थी, सो निशापति के आगमन की बात सुनकर हर्ष से प्रफुल्लित हुई।

महाकामी निशाकर दिनभर दिनमणि के भय से घर के बाहर नहीं निकले थे; उन्हें अस्तमित होते देखकर वे प्राची दिशा से मुख निकाल और इधर उधर देखकर गगनप्राङ्गण में अर्द्धकला विस्तार करते करते उदय हुए, और उन्होंने अपनी शीतल कौमुदी से जगतीतल को रौप्यवर्ण कर दिया।

पक्षीकुल निशागमन के पूर्वही निज निज कोटरों में प्रवेश करके सो रहे थे, पशुकुल भी इधर उधर तरुच्छाया में रात्रियापन करने लगे थे, और एक प्रकार बन में शान्ति फैली हुई थी।

धीरे धीरे रात्रि हुई। दोनों बंधु जिधर से आए थे, उस मार्ग को न पाकर और रात्रि का आगमन देखकर कुछ मन ही मन उद्विग्न हुए। भला! रात्रि के समय सघन बन में मार्ग का पता कब लग सकता है? बन भी सघन, तरुलताओं से पूर्ण और बीहड़ था। बड़े बड़े महीरुह ऊंचा सिर किए मानों पथिकों को अपनी शाखा हिलाकर इस बन में प्रवेश करने का निषेध करते थे। उस बन में चन्द्रिकामाला के आने की शक्ति नहीं थी। ठहर ठहर कर भयकर प्राणघाती निशाचर पशुओं के चीत्कार से हृत्कंप होता था और विस्तीर्ण बन में केवल दो मनुष्य थे।

दोनों बंधुओं ने साहस पर निर्भर हो, एक ऊंचे वृक्ष पर आरोहण करके देखा तो चंद्रालोक में थोड़ी दूर पर एक गिरिगुहा देख पड़ी। उस निस्सीम बन में घोर रजनी के समय एक आश्रय पाकर दोनों के चित्त में आशा का उदय हुआ। वृक्ष से शीघ्र उतर कर वे दोनों गुहा की ओर गए और उसे भली भांति देखा कि दरी भीतर से प्रशस्त और निरापद थी और उसमें जीव-जंतु का कोई भय नहीं था।

यह जान कर उसीमें रात्रियापन का संकल्प करके महाराज ने कहा,—"मित्र! यहीं किसी प्रकार रात्रियापन करना चाहिए।"

मन्त्री,—"अगत्या यही करना पड़ेगा।"

महाराज,—"यह भी समय की विड़ंबना है; कहाँ राजप्रासाद, दुग्धफेननिभ शैया; और कहां इस वन की भयावनी कन्द्रा!"

मंत्री,—"ह ह ह!!! किस कार्य्य के लिए जाते थे, और बीच में क्या उपद्रव उपस्थित हुआ!"

महाराज,—"अस्तु, प्रथम तुम शयन करो, हम द्वार पर बैठ कर पहरा देंगे।"

मंत्री,—"नहीं, नहीं, प्रथम तुम्हीं शयन करो, यह हमारा धर्म नहीं है, कि हम प्रथम शयन करें।"

महाराज,—"तो क्या हमारा यह धर्म है कि तुम्हें आपद में छोड़ कर हम शयन करें?"

मन्त्री,—"कोई चिन्ता नहीं, प्रथम तुम शयन करो, जब हमें निद्रा आने लगेगी तो हम तुम्हें जगा देंगे।"

महाराज,—"नहीं, प्रथम तुम्हीं सोवो।"

मंत्री,—"यह महा अनुचित होता है।"

महाराज,—"तो जाने दो, न तुम शयन करो, न हम!!!"

अनंतर अनेक तर्क वितर्क होने पर मंत्री ने परास्त होकर प्रथम शयन करना स्वीकार किया। अश्वों को पास ही वृक्ष में बांध कर मंत्री ने शयन किया, और महाराज सन्मुख भाला रख, हाथ में नङ्गी तलवार लेकर कंदरा के द्वार पर वीरासन से बैठ गए। हा! समय की कैसी बिड़ंवना है! जो राजप्रासाद में स्वर्गीय सुख प्राप्त होने पर भी शान्ति लाभ नहीं कर सकते, वेही समय पड़ने पर निराहार भूशय्या पर सुखपूर्वक निद्रासेवन करते हैं! चाहे कुछ भी हो, प्रकृत बंधु के संग मनुष्य को किसी स्थल में भी विशेष दुःख नहीं व्यापता। इस लिये महाराज इस अवस्था में भी प्रसन्नता से रात्रियापन करते थे।

निशीथ समय में चन्द्रज्योत्स्ना और शीतल, मंद, सुगंधपवन के लगने से महाराज पर प्रबल निद्रा ने आक्रमण किया। उनकी उस समय इतनी सत्ता नहीं थी कि मंत्री को सचेत करके शयन करते! देखते देखते दोनो मित्र निराश्रय पर्वतारण्य में भूशैय्या पर सो गए। जब प्रातःकाल मन्त्री की आंख खुली तो उन्होंने देखा कि महाराज नहीं हैं!!! क्यों? वे कहा गए?

छठां परिच्छेद

बंधुविच्छेद।

"एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद् द्वितीयं समुपस्थित मे——————"

(हितोपदेश)

इधर महाराज ने जब आंखें खोलकर देखा तो न वह बन है, न गुहा है, न अभिन्नहृदय मित्र हैं और न रजनी है! उन सभों के बदले उन्होंने अपने को एक अट्टालिका में परिष्कार शैय्या पर शयन करते हुए पाया। महाराज ने कभी आंख बंद करके और कभी खोल कर उत्तमता से चारो ओर देख अपनी अवस्था की परीक्षा की, पर फल कुछ न हुआ। उन्होंने स्वयं कहा,—"यह क्या हम दुःस्वप्न देख रहे हैं! वा कोई इन्द्रजाल है! किसीने वस्तुतः हमें इस मायाजाल मे फँसाया है? यह किस मायावी वा मायाविनी का कर्म है?"

अनेक तर्कवितर्क करने पर भी वे इस व्यापार को समझ न सके। अनंतर वे शैय्या त्याग, इधर उधर प्रकोष्ठ में टहलने लगे। उन्होंने चारो ओर देखा, किन्तु कहीं भी खिड़की, मोखा वा कोई छिद्र नहीं दिखाई दिया। गृह में केवल एकमात्र द्वार था, जो परीक्षा करने से जान पड़ा कि वह भी बाहर से बंद है। महाराज ने बहुत खोजा, पर उस द्वार में कोई भी छिद्र नहीं पाया गया कि उसकी सहायता से कुछ बाहर का वृत्तान्त जाना जाता। अनंतर वे हताश, आश्चर्यान्वित और संदिग्ध तथा कुछ भयविह्वल होकर उसी गृह में इधर उधर घूमने लगे। क्षण काल के पश्चात हृदय का भय दूर करके वे दृढ़ता से शैय्या पर आकर बैठे, पर अपने पास शस्त्र के न रहने से कुछ घबरा गए। उस घर में शैय्या के अतिरिक्त और कोई पदार्थ नहीं था, जिससे वे अपने चित्त को आनन्दित करते। सो खाली बैठे बैठे उनका चित्त घबराने लगा। कालातिक्रमण होने और कल के एक प्रकार निराहार दिन यापन करने से क्षुधा-पिपासा भयंकर मूर्त्ति धारण करके उन पर आक्रमण करने लगीं।

कई घंटे योंही व्यतीत हुए, पर द्वार नहीं खुला। महाराज विकल होकर बार बार जगदीश्वर के निकट उपस्थित विपद से परित्राण पाने के लिये प्रार्थना करते थे। भगवान दयालु हैं, क्या वे शुद्धहृदय महाराज की कातरोक्ति पर ध्यान नहीं देंगे?

महाराज ने बिकल हो, आपही आप कहा,—"हैं! यह किसका कर्म है! यह बिपद क्या है, और इसका हेतु क्या है? किसने किसलिये हमें रात को सोते से उठा लाकर यहां कैद कर रक्खा है? जो हो, हमें निश्चय है कि इसमे कुछ रहस्य अवश्य है।"

महाराज ने कुछ भी न समझा। उनका चित्त इस अद्भुत व्यापार के जानने के लिये महा व्यग्र होने लगा, किन्तु उपाय क्या था? इतने ही में उस घर की छत की एक पत्थर की पटिया हट गई और उसके रास्ते से किसी अपरिचित ने एक तलवार और एक बरछा महाराज के आगे फेंक कर धीरे से कहा,—"सावधान! यह स्थान बड़ा बिकट है। आपको चाहिए कि यहां सावधान रहें और अपने को इस विपद से बचावें। यदि ईश्वर की दया से आप यहांसे बच कर निकल सकें तो अपने घोड़े को अपने शस्त्रों के सहित इस मकान से दो सौ कदम आगे एक आम की बारी में पावेंगे। बस, जब वहां आप पहुंच जायं, तब अपने को निरापद समझिएगा।"

बस, इतना कह और छत की पटिया बराबर करके वह अजनबी चला गया और महाराज उसकी बातों पर गौर करते हुए तलवार और बरछे को सम्हाल दीवार के सहारे खड़े होगए। थोड़ीही देर में उस गृह का द्वार खुला, और पांच चार राक्षसाकृति सशस्त्र पठानों ने प्रवेश किया। उनका हठात् प्रवेश, और कुत्सित वेश देखकर एक बार महाराज कुछ भयभीत हुए, किन्तु क्षणभर में आत्मसंयम करके उन्होंने हृदय से भय को दूर किया, और दृढ़ता से उनकी ओर देखने लगे।

आगंतुक पठान महाराज के सन्मुख भूमि में बैठ गए। थोड़ी देर तक सबके सब चुप रहे, अनन्तर उनमें से एक व्यक्ति ने मुस्कुराकर कहा,—"हमलोगों ने शिकार के वक्त जङ्गल में आपको देखकर कुछ अपनी दिली ख्वाहिश पूरी करने के लिये आपको सोते हुए यहां उठा लाना मुनासिब समझा। तो क्यों इतनी

तकलीफ़ आपको दी, क्या इसे आप समझ सकते हैं ?"

महाराज क्षणभर उनकी बातों पर विचार करके निर्भय होकर बोले,—"जिस अभिलाषा से यह गर्हित कार्य्य किया गया है, उसमें केवल शठता के अतिरिक्त और क्या होगा ?"

एक पठान,—"आप ज़रा अकलमंदी को जगह देकर गुफ्तगू कीजिए। ख़ैर! अब जो आपको इस कैद से छूटना मंज़ूर हो तो हमलोगों की तीन बातें आप मंजूर करिए; वरन कयामत तक आपको यही अपनी ज़िंदगी बसर करनी होगी। अगर आपने हमारी अर्ज़ कुबूल की तो ताज़ीस्त हमलोग आपके साथ दोस्ती की राह से पेश आएंगे।"

महाराज,—"तुम्हारी बातों में सभ्यता का लेशमात्र भी नहीं है, इससे अनुमान होता है कि तुम्हारा स्वभाव कैसा निंदनीय है! इसीसे तुम्हारी बातों और मन्तव्यों का भी कुछ कुछ आशय हमने समझा है; अर्थात् वह भी मनुष्यता से रहित ही होगा। अस्तु जो हो; प्रथम तुम अपना आशय प्रकट करो।

एक पठान,—"अव्वलन यह कि हमलोग कारे ठगी करते हैं, लेकिन सल्तनत का इन्तज़ाम ठीक होने से हमलोगों के कामों में ख़लल पड़ता है, इसीलिये हमलोगों ने सूबेदार साहब को कुछ सालाना नज़राने पर ठीक कर लिया है; चुनांचे अब वे हमलोगों से, या हमलोगों के कामों में दस्तंदाज़ी नहीं करेंगे। मगर सुना है कि शाहेदेहली यहां वास्ते फ़तहयाबी के आ रहे हैं, सो आप हर्गिज़ उनकी मदद न करें, बल्कि उन्हें यहांसे दूर करने की कोशिश करें। यानी खुलासा यह कि आप बादशाह की ओर न मिलकर सूबेदार साहब की मदद करें।

"दोयमश, इन दिनों लूट में बहुत माल हाथ आते हैं, मगर बवजह न रहने किसी ज़बरदस्त मददग़ार के हर जगह हमलोग कामयाबी नहीं हासिल कर सकते; इस वास्ते इरादा है, कि आप हमारे गरोह के सरदार और सरपरस्त बनें और लूट के माल का चौथाई हिस्सा आप खुशी से लेलेवें।

"तीसरे अपनी अमलदारी में ठगोंपर आप ज़ुल्म न करें, और बेरोक टोक डांका पड़ने दिया करें। अगर ख़ुदानख़ास्ते कोई ठग गिरफ़्तार होकर आपके रूबरू पेश कियाजाय तो वह फ़ौरन छोड़ दिया जाया करे।

"मगर एक बात और भी कहे देता हूं,वह यह कि अपने ख़ज़ाने में से दो लाख सालाना ठगों के वास्ते ख़र्च के ज़रूर दिया करें, इसके एवज़ मे हमलोग आपके दुश्मनों से आपकी सल्तनत की वक्त ब वक्त हिफ़ाज़त किया करेंगे।"

महाराज,—"आपने किस नाम को पवित्र किया है?"

पठान,-"मेरा नाम मुहम्मदक़ासिम है।मैं सूबेदार साहबका रिसाल-दार और दोस्त हूं, बलिक उन्हींके इशारेसे मैंने आपको यह तकलीफ़ दी है।अब उम्मीद कामिल है कि आप ज़रूर मेरी अर्ज़ क़ुबूल करेंगे।"

महाराज,—"तो आप मूल ही में भूल करते हैं!"

क़ासिम,—"क्या, क्या! मैंने क्या भूल की?"

महाराज की आखें क्रोध से लाल होगईं, मानों उनमें से रक्त टपकना चाहता था! ओष्ठ और भुजा फड़कने लगी,अंग रोमांचित और कंपित होने लगा, आर्य्यशोणित अतिशय उष्ण होकर शिरा शिरा में प्रधावित होकर मस्तिष्क मे प्रबल आघात करने लगा और वीरावेश से शरीर मे नए बल का संचार हुआ।

सतर्क होकर महाराज ने कहा,—"तुम्हारी सब बातें असभ्यता, निर्दयता, वंचकता, और पशुता से पूर्ण हैं। क्षत्रियवीर ऐसी कुत्सित बातों के सुनने मे भी घृणा करते हैं; करना तो दूर है।"

क़ासिम,—"तो अब तुम्हारी कज़ा आगई।"

यों कहकर ज्योंही कासिम उठ कर वार किया चाहता था कि महाराज ने, जो प्रथमही से सतर्क थे, शीघ्रता से उछल कर उसका वार अपने बरछे पर रोका और पैतरा बदल कर तलवार का एक ऐसा हाथ उसकी गर्दन पर मारा कि तत्क्षण उसकी देह शिररहित होगई। उसके मुख से एक शब्द भी नही निकला था कि वह असार ससार से उठाकर नरकाग्नि में डाल दिया गया। शेष जो चारों यवन स्तंभित होकर अबतक चित्र की भाँति बैठे बैठे यह तमाशा देख रहे थे, वे क़ासिम के भूमिसात् होतेही, क्षुधित व्याघ्र की नाईं महाराज पर एक संग झपट कर आक्रमण करने लगे।

यवनों ने चिल्लाकर कहा,—"देख, काफ़िर! तुझे अभी जहन्नुम-रसीदः करता हूँ। दोज़ख़ी कुत्ते! ज़रा ठहर जा।"

महाराज,—"चुपरह; दुर्वृत्त, नरघातक, पिशाच! तेरी मृत्यु सन्निकट है।"

यवन,—"देख, बुतपरस्त काफ़िर ! अपने किये का नतीजा तू अभी पाता है।"

"पहले तू तो अपना नतीजा भोग!" यों कहकर द्विगुणित उत्साहित और क्रोधान्ध होकर महाराज ने तलवार चलाने की निपुणता से तीन यवनो को और भी मृत्यु के हाथ सौंपा, शेष एक व्यक्ति अपनी जान लेकर भाग गया। महाराज अतिशय श्रांत और कातर होगए थे, उनके कई अंगों में हलकीसी चोट भी लगी थी, किन्तु उस पर दृष्टिपात न करके वे बाहर आकर उसी ओर चले, जिधर का पता उस अपरिचित ने बतलाया था। सो शीघ्रता से महाराज ने उस आमबारी में पहुंच कर क्या देखा कि वही अपरिचित व्यक्ति उन्हींका घोड़ा और अस्त्र-शस्त्र लिये खड़ा है !

उसे देख और चकित होकर महाराज ने कहा,—" भई ! तुम कौन महात्मा हो ? आज तुमने हमें शस्त्र देकर हमारे प्राण बचाए; इसका हम तुम्हे शुद्धान्तःकरण से असंख्य धन्यवाद देते हैं; पर यह तो कहो कि तुमने हमारे घोड़े और अस्त्र-शस्त्र को कहासे पाया ?"

उनकी बातें सुनकर उस अपरिचित व्यक्ति ने सिर झुकाकर कहा,-"श्रीमान् ! मनुष्य की रक्षा जगदीश्वर ही करता है; मैं क्या वस्तु हूं, जो आप मुझे यों लज्जित करते हैं ! उचित है कि आप ईश्वर का धन्यवाद करें। इसके अलावे आपके अश्व या शस्त्र को मैंने कैसे पाया, इसका रहस्य मैं फिर किसी समय श्रीमान पर प्रगट करूंगा।"

यों कहकर वह जाने लगा तो उसे रोककर महाराज ने अपने गले से एक मोती की माला उतार कर उस अजनबी को दी और कहा,—"तुम्हारे उपकार के बदले में यह कुछ भी नहीं है, तथापि हमें अपना मित्र समझ कर इसे ग्रहण करो। यदि समय आया तो हम तुम्हारे साथ बड़ा भारी सलूक करेंगे।"

इतना सुन और माला ले, तथा सिर नवाकर वह अपरिचित उस आमबारीमें अन्तर्धान होगया और महाराज उस बारी से बाहर हो, पूर्व की ओर चले। मध्याह्न हो जाने से उनका शरीर अतिशय क्लांत होगया था। पाठक ! ये वेही महाराज हैं, जिन्होंने यहासे चलकर मंदिर में आश्रय ले, अपने हृदय में मल्लिका को प्रतिष्ठित किया था। यवनों का संहार करके वे मन्दिरही में जाकर सरला के अतिथि हुए थे, और यह अजनबी भी पाठकों से अपरिचित नहीं है।

सातवां परिच्छेद.

आत्मरक्षा।

"भगवन्न सहे दुःखं विस्मयाकुलितो जनः"

(स्कंदपुराण)

उधर डांकुओं का संहार करके महाराज तो मल्लिकादेवी की दिव्यच्छटा से छकित हो आनद-उपभोग मे निमग्न थे; इधर प्रातःकाल वन्यगिरिगुहा मे मन्त्री महाशय जागृत हो, समीप महाराज को न देखकर यह समझे कि,—'प्रातःकर्म समापन के लिये कदाचित वे जलाशय के समीप गए होंगे ! किन्तु प्रातःक्रिया में इतना आज विलब क्यों हुआ ? तीन घटे बाट देखते देखते बीत गए, तो भी महाराज का अदर्शन !!! क्या फिर तो वे मृगशावक के मोहजाल में नही पड़े ?'

मत्री, महाराज को इतने विलब पर भी आते न देखकर अतिशय व्यथित हुए। अनेक प्रकार की शका उनके मन में उदय होतीं, पर दूसरी के आतेही पहिली तिरोहित होजाती थी। उनके चित्त में यही उथल पुथल होने लगा। मत्री ने अन्त में चारो ओर घूम घूम कर महाराज का बहुत अन्वेषण किया, पर कुछभी फल नही मिला। ऊंचे-ऊचे वृक्षों पर चढ़कर चारो ओर दृष्टि दौड़ाई, किन्तु कहीं भी महाराज का चिह्न नही दीख पडा। तब वे हताश होकर वृक्ष से उतर आए। उन्होंने देखा कि,–'कंदरा के समीपही दो घोडों में से महाराज का घोडा नहीं है !'

अश्व को न देख कर मंत्री के मन में महासदेह हुआ। उनका मुख शुष्क और कालिमावर्ण होगया। हृदय भग्न और अंग प्रत्यग शिथिल होगया। दृष्टि अश्रुपूर्ण और बुद्धि अस्तमित होने लगी। भय के संग शोक का चिह्न मुखपर चमकने लगा। वे धीरे धीरे निकटवर्ती सरोवर के तीर पर जाकर इधर उधर चित्त बहलाने और महाराज का अन्वेषण करने लगे, पर न तो महाराज का ही कहीं दर्शन हुआ, और न चंचल चित्त में शान्ति का ही उदय हुआ।

वे अतिशय दुःखित होकर गद्गद स्वर से स्वयं कहने लगे,—

हा ! सखे ! तुम कहां हो ? बिना मित्र को संग लिये कहां सिधारे ?

प्यारे! तुम तो हमारे बिना क्षणभर भी सुख का अनुभव नहीं कर सकते थे, आज क्या हुआ, जो मित्र को छोड़कर चले गए ? ऐसा कौनसा काम था ? हा ! हृदय विदीर्ण होता है ! क्या तुम वीरकेशरी होकर वन्यपशुओं के आहार तो नहीं हुए ? या किसी शत्रु के हाथ में पड़कर तुम कष्ट पारहे हो ? मित्र ! तुम्हारी क्या दशा है ! तुम कहां हो ? हमसे कौन ऐसा अपराध हुआ कि बिना कहे सुने चले गए ! ऐसा तो तुम्हारा स्वभाव नहीं था ! ! ! मित्र ! कुछ समझ नहीं पड़ता कि क्या बात है ? हाय! ! कैसे कुअवसर में घर से यात्रा की थी कि 'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः' हुआ। देखें ! अभी आगे अदृष्ट क्या क्या दृश्य दिखाता है ! ! !'

उनका मन किसी प्रकार भी शान्तिलाभ नहीं कर सका। अन्त में वे सघन तरु की छाया में, कर पर कपोल रख कर बैठ गए। उनकी आंखों से अश्रुविन्दु कपोलों पर बहकर धरती में गिरने लगा।

धीरे-धीरे सूर्यदेव लोहित कर विस्तार कर, प्राची दिशा का मुख रंजित करते हुए अपनी रंगशाला में आ उपस्थित हुए। पक्षिगण आनन्दपूर्वक निद्रादेवी को बिदाकर अपने कलरव से दिनेश की स्तुति करते करते इधर उधर आहार के लिये आकाश में उड़ने लगे। बन के निशाचर जीव गिरिगुहा में प्रविष्ट होकर रात्रि के श्रम को दूर करने लगे और पशुकुल का तुमुल रव तथा उनके भागने का शब्द चारोंओर प्रतिध्वनित होने लगा। यामिनी दिननाथ को देखकर लज्जित हो, तिमिरावगुंठन-पूर्वक अपने अंतःपुर में प्रविष्ट हुई, उसका अनुचर तम भी उसके पीछे पीछे भाग गया।

मंत्री ने हताश होकर फिर चलने का उद्योग किया। उन्होंने अपना उत्तरीय उतार कर फटकारा तो उसमें से एक टुकड़ा काग़ज़ का गिर पड़ा; उसे देख कुतूहलाक्रांत होकर उन्होंने उठा लिया और पढ़ा। उसमें जो लिखा था, उसे पढ़कर उनका आश्चर्य द्विगुण बढ़गया, आशा-निराशा एक संग मन के भीतर लड़ने लगीं और चिन्ता ने इतना उपद्रव मचाया कि वे उस पुरजे का आशय कुछ भी नहीं समझ सके।

उसमें कुछ विशेषता नहीं थी, केवल इतनाही लिखा था कि,-

"आप न घबराएं; महाराज जहां हैं, अच्छी तरह हैं।"

मंत्री मनही मन अतिशय चंचल होकर कल्पना करने लगे,—

'एं ! यह किसने लिखकर हमारे दुपट्टे में बांध दिया ? ये फ़ारसी

अक्षर क्या किसी यवन ने लिखे हैं? परन्तु वीरवर महाराज को वह कैसे हस्तगत करके लेगया? वे तो हमें शयन कराकर स्वयं पहरा देते थे, तब उस जाग्रत अवस्था में उन्हे किसने हर लिया? पकड़ने के समय कोलाहल भी अवश्य होता? उस समय क्या हम नहीं जागते? तो क्या मित्र संमत होकर उसके साथ गए हैं? क्यों? ऐसा क्या कार्य्य था, जो प्राणोपम सखा (हम) को छोडकर घोर रजनी में बिना कहे सुने चले गए!!! यह क्या प्रतारक विश्वासघाती पठानों का कुकर्म है? धन्य री, माया! धन्य! हा कैसा चित्त उद्विग्न होरहा है! कुछ भी पता नही लगता कि मित्र क्या हुए!!!'

अनेक तर्क वितर्क करने पर भी मंत्री ने उसका कुछ निगूढ़ कारण नहीं समझा। अगत्या अश्वारूढ़ होकर सेना के अनुसन्धान में एक प्रसस्त वनमार्ग से वे चलने लगे। कई घण्टे के अनन्तर वे अपनी सेना में पहुंच गए। सेना शिबिर स्थापन किए हुए सतर्कता से पड़ी थी। मंत्री को देखकर सब सैनिकों ने सहर्ष अभिवादन किया। एक सेनाध्यक्ष मंत्री का अतीव प्रियपात्र था, नाम उसका खड़गसिंह था। सो, 'महाराज को न देखकर सब सैनिक आतुर होरहे हैं,' यह जानकर एकान्त में उसने मंत्री से कहा,—"प्रभू! आपने महाराज को कहां छोड़ा?"

मंत्री,—"विधि के हाथ।"

खड्ग,—"यह क्या?"

मंत्री की आंखों मे आंसू भर आए, उन्होंने दीर्घनिश्वास लेकर कहा,—"खड्गसिंह! कुछ कहने की बात नहीं है।"

खड्ग,—"क्या अमङ्गल!!!"

मंत्री,—"यदि ऐसा निश्चय हो तो हम अभी प्राण विसर्जन करें।"

खड्ग,—"भई, बात क्या है, सो तो सुनें! आपकी बातों से उत्तरोत्तर अधीरता बढ़ती जाती है।"

"ऐसा विषय ही है;" यों कहकर मत्री ने सब आनुपूर्विक घटना खड्गसिंह को सुनाई, जिसे सुन क्षणभर चुप रहकर खड्गसिंह ने कहा,-"यह कार्य अवश्य नव्वाब का है, इसका शीघ्र अनुसंधान करना चाहिए।

यही बात स्थिर कर और सैनिकों को प्रबोधवाक्य से संतुष्ट करके मंत्री महाशय शीघ्र सेना के साथ आगे बढ़े। कई कोस जाने पर सभोंने बिना स्नानाहार किए ही राज्य की ओर गमन किया। मध्याह्न के समय वनस्थली छोड़कर सैन्यदल राज्य की ओर बढ़ा जाता था।

सूर्योत्ताप के मारे सभी व्याकुल थे, किन्तु उपायान्तर न देखकर शीघ्रता से चले जाते थे।

वे सब दो कोस गए होंगे कि इसी अवसर में पठानों की सेना ने उनकी गति रोकी। एकाएक ऐसे स्थल में शत्रुसेना को सामने देख सब घबरा गए, पर बहुदर्शी मंत्री ने सभोंको उत्साहित करके साहस प्रदान किया, और शत्रु की सेना के अभिप्राय के जानने के लिये खड्गसिंह को भेजा। ऐसे अवसर में सहसा कोई व्यक्ति शत्रुसेना में प्रवेश नहीं कर सकता, पर असीम बलशाली खड्गसिंह ने यथार्थ खड्गसिंह का रूप धारण करके शत्रुसेना में गमन किया। क्षणभर के अनंतर खड्गसिंह के संग एक यवन, मंत्री के सन्मुख आया। पाठक! यह वही यवन है, जो आज ही प्रातःकाल प्राणभय से महाराज के सामने से भागा था। सो वह महाराज को धरने के अभिप्राय से सेना लेकर आता था, सोई मत्री से मार्ग में भेंट हुई!

उसे आदर से बैठाकर मंत्री ने कहा,—"आपका नाम क्याहै? और क्यों इस प्रकार आप हमलोगों को रोकते हैं?"

यवन,—"हमारा नाम अमीरअली है; कल हम्हीं लोग महाराज को सोते हुए उठा लेगए थे।

मंत्रीने इतनेही सूत्र से सब घटना मिलाकर कहा,-"यह तुम्हारा महा कुकर्म है, अस्तु उन्हें तुम क्यों लेगए थे, और अब वे कहाँ हैं?"

इसका जवाब न देकर पहिले उसने मत्री से वेही बातें कहीं, जो महाराज से कही गई थीं। और उन बातों के न मानने पर भय दिखाया और उसने झूठमूठ यह भी कहा कि,—"अभी महाराज कैद हैं।"

उसकी बातों, और धृष्टता से मंत्री अग्निशर्मा होगए! वे गरज कर बोले,—"सत्यानाशी! नरराक्षस! अब तेरी दुष्टता समझे! बता, महाराज कहां हैं?"

इस पर उसके मुख से,-"जहन्नुम में" यह शब्द सुनतेही मत्री क्रोध को रोक न सके और उन्होंने उछलकर ऐसा खड्ग मारा कि अमीरअली ने तुरन्त दोज़ख़ का रास्ता लिया। उसके मारे जातेही, "अहमक, काफ़िर, हिंदू होशियार!" यों कहकर यवनसेना टिड्डीदल की तरह आ टूटी, किंतु वीरवर हिंदुओं ने क्षणभर में वहीं सबका संहार करके अपना मार्ग लिया, और राजभवन में पहुंचतेही मंत्री ने महाराज के अनुसंधान के लिये दूतों को इधर उधर प्रेरण किया।

आठवां परिच्छेद.

मंत्रणा।

" करोतु नाम नीतिज्ञो व्यवसायमितस्ततः।
फलं पुनस्तदेवं स्याद्यद्विधेर्मनसि स्थितम् ॥"

(नीतिसार)

संध्या समागतप्राय थी। सूर्य्यनारायण अपना प्रखर करनिकर आकर्षण करके धीरे धीरे अस्ताचल की ओर धावित होने लगे थे, अस्त होने में कई क्षणों का ही बिलंब रह गया था। सध्यादेवी का आगमन देखकर विहंगगण दुर्गम और दूरस्थ स्थान से सत्वर आआ कर अपने अपने नीड़ों मे प्रविष्ट हो, निज मातापिता और शिशुसंतानों से घोर रजनी के आगमन का कुसबाद कहने और अन्नजल त्याग कर निद्रादेवी के कोमल क्रोड़ में रात्रियापन करने लगे थे।

प्राप्तयौवना सती कमलिनी,—' पति के विरह में कैसी दुर्गति होगी!' यह विचार कर दिनकर को अपने कर से प्रस्थान का निषेध करती थी, किन्तु—'नाथ मेरी बातों पर कर्णपात न करके सपत्नी के घर चले ही जाते हैं,'—यों सोच कर दुःखित हो, मुख मलिन करके अवगुंठनवती हो, सकोच से रोदनोन्मुखी हुई।

इधर निशाकर को देख, निशाचरगण हर्षोत्फुल्ल हो अपना स्थान छोड़कर आहार-विहार के लिये वर्हिगत हुए। आगतपतिका कुमुदिनी नूतन वेश से अलंकृत और प्रफुल्ल होकर विकसित मुख से पति का स्वागत करने, और उनका कर धर कर हृदय शीतल करने लगी। संसार ने मानो ज्योत्स्ना का जामा पहिर लिया।

रात्रि के दो बज गए होंगे। भार्गवपुर, (भागलपुर,) के गंगातट-वर्ती दुर्गस्थ राजकीय सुसज्जित प्रकोष्ठ में एक युवक पर्य्यंक पर बैठे कोई गंभीर बिचार में डूबे हुए थे। उनका वयःक्रम विचार करने से अन्यून बीस बाईस वर्ष से अधिक प्रतीत होता था। अंग प्रत्यंग सुडौल, पुष्ट और सुन्दरता से युक्त था। रंग गौर और कान्तिविशिष्ट था। मुखश्री सुंदर और हृदयहारिणी तथा रमणीय थी। कुंचित कृष्ण

केश कपोलों पर अपूर्व छबि देते थे। कड़ी और ऊर्ध्वगोमिनी मूछें, तथा श्मश्रुरेखा मुख को अलंकृत कर रही थीं। भ्रू युगल संलग्न और नेत्र आकर्णावलंबी तथा नुकीले थे। इनके देखने से विधि की शिल्प-चातुरी का पूरा परिचय मिलता था। इस समय ये एक बहुमूल्य वस्त्र धारण किए चिन्ता मे डूबे थे। इनका प्रसन्न हास्यमय मुख देखने से आशा और विषाद से मिश्रित तथा मलीन प्रतीत होता था। ऐसी छबि भी चित्त के आकर्षण करनेवाली थी। युवक एकाकी ही बैठे थे।

एक के अनंतर दूसरी, तीसरी, योंहीं नाना प्रकार की चिंताएं आ आ कर उनका मन विलोड़ित कर रही थीं। वहां अपर व्यक्ति के न रहने से चिन्ता ने स्वतंत्र होकर एकाकी उक्त युवा पर पूर्णरूप से आक्रमण करना आरंभ किया; यहां तक कि युवक की सामर्थ्य न रही कि वे चिन्ता के सग्राम को जीतकर विजयध्वजा रोपण करते!

सहसा उसी प्रकोष्ठ में अपर एक युवा ने प्रवेश किया। जिन उपकरणों के रहने से मनुष्य की गणना सुंदर पुरुषों में होती है, इस युवा में उन उपादानों का कुछ भी अभाव नहीं था। यदि था भी तो केवल इतनाही कि प्रथम युवक से ये इतने ही न्यून थे, जितना पूर्णिमा के चद्रमा से चतुर्दशी का। चिंताकुल युवा चिंता मे इस प्रकार अतिशय निमग्न थे कि आगतुक का आना भी उन्होंने नहीं जाना।

उनकी यह दशा देखकर आगतुक ने कहा,—"प्रिय वयस्य! क्यों, आज इतनी चिंता को अवसर देनेका कारण क्या है? यदि तुम वीरवर और महाराज होकर इस प्रकार एकाएक अन्यमनस्क होकर कार्य करोगे तो इस कठिन समय में देश और राज्य, तथा प्रजा की क्या गति होगी?"

किन्तु, वह युवा उस समय इतने चिंता के पाहुने होरहे थे कि मानो उनके कानो में कोई शब्द ही नहीं पहुंचा। यह देख आगंतुक ने क्षण भर चुप रह कर उनकी अवस्था को लक्ष्य करके फिर कहा,—"वयस्य! शान्त होवो, चिंता के बेग को रोको। विद्वानों ने चिता से चिन्ता को विशेष दग्धकारिणी कहा है। भई! ऐसे संकट के समय में कटिबद्ध न होकर जो तुम्हीं धैर्य्यच्युत होगे तो कार्यभार कौन सम्हालेगा? और तुम्हे धीरज धरानेवाला ही कौन है?"

युवा का नाम नरेंद्रसिंह था। आगंतुक की बातों ने उनके रोमरोम में विद्युत् बेग से प्रवेश किया। उनका ध्यान भग हुआ और वे

आगन्तुक को देख तथा लज्जित हो हंसकर बोले,—"अहा! विनोद! तुम आगए? भई! इस समय हम चिंता से लड़ रहे थे, अच्छा हुआ कि तुमने आकर उस राक्षसी से हमारी रक्षा की। वाह! हम इतने अन्यमनस्क थे कि तुम्हारा आना तक नही जान पड़ा। अस्तु, बैठो! कहो, क्या समाचार है? वृद्ध मन्त्री महाशय से हमारे आने के पश्चात् क्या क्या परामर्श हुआ?"

आगन्तुक का नाम बिनोदसिंह था, ये वर्त्तमान महाराज नरेन्द्रसिंह के बाल्यसखा और अब प्रधानमन्त्री भी थे। इनके पिता, जो कि प्रथम प्रधानमन्त्री थे, उनके अन्तर्धान होने पर इनके चचा अब मंत्रित्व को त्यागकर भगवद्भजन करते थे। उनका नाम धीरेन्द्रसिंह था। अभी महाराज नरेन्द्रसिंह ने उन्हीको लक्ष्य करके बिनोदसिंह से पूछा था।

हम कभी कभी केवल नरेन्द्र वा विनोद ही कहकर लिखा करेंगे। अस्तु, नरेन्द्र ने विनोद का हाथ थाम कर सादर अपने पास बैठा लिया और विनोद ने कहा,—

"राजन्! पठानों ने महा अत्याचार करना आरम्भ किया है। इनके उत्पात से सारा वंगदेश थर्रा उठा है। प्रजा त्राहि त्राहि करके, या तो प्राण विसर्जन करती है या मान-सम्भ्रम बचाने के लिए देशान्तर्गमन करती है। प्रजा का सर्वनाश, डांका, और अबला सती स्त्रियों का हाहाकार सुनते सुनते छाती फट रही है; कान बहरे, और देह अवसन्न प्राय होगई है; परन्तु पापी को अवश्य दण्ड मिलेगा, अभी भी ईश्वर जागृत और धर्म जीवित हैं। दो चार दिन में देहली के बादशाह आयाही चाहते हैं।"

नरेन्द्र,—"हा! हमें तो निश्चय प्रतीत होता है कि वृद्ध मंत्री महाशय का इन्ही दुष्टों ने षड्यन्त्र करके सर्वनाश (बध) किया होगा! उसी दिन से उनकी सती स्त्री और सरलहृदया बालिका का भी कुछ पता नही है। न जाने क्यों, बीरसिंह, जो हमारे यहां पहिले सेनाध्यक्ष था, उसी दिन से नव्वाब के यहां चला गया है। यह क्यों? उसे किसने भड़काया? उसकी स्त्री का भी पता तभी से नहीं लगता। हा! आज यदि वृद्ध मन्त्री होते तो और भी सहायता मिलती।"

विनोद,—"अवश्य! किन्तु बीती बातों को जाने दो। नव्वाब

का पत्र तुमने देखा न।"

नरेन्द्र,—"उस सत्यानाशी के असभ्यतामय पत्र को हमने पढ़कर मारे क्रोध के जला डाला। अब बिना उसका उष्ण रक्त पान किए, हमारा हृदय शीतल नहीं होगा।"

विनोद,—"पत्र जलाना उत्तम नहीं हुआ, वह पत्र बादशाह को दिखलाया जाता; अस्तु। प्रबल शत्रु को मोठी छुरी से, वा कण्टक को कण्टक से ही दूर करना चाहिए। अस्तु, उसने क्या लिखा था, यह तो स्मरण है न?"

नरेन्द्र,—"भई उस सत्यानाशी का अब नाम न लो, प्रतारक लिखता है कि, 'किला खाली कर दो, तुम्हारे दीवान की लड़की कहां है, उसे खोजकर हमारी ख़िदमत मे दाखिल करो, दस लाख रुपए नक़्द और अपनी कुल फ़ौजें देदो, हमारी ओर से शाहदेहली से लड़ो—' इत्यादि इत्यादि। क्या, तुम्हारे चचा ने उसके पत्र का उत्तर लिखा!"

विनोद,—"हां! सब ठीक है। हम लोग उस नरप्रेत को स्वर्ग की सैर मे अंटका लेंगे। उत्तर भी इस प्रकार का दिया गया है, कि वह पापी भी समय निकल जाने पर याद करेगा। बस! बादशाह आए, और सब संदेह मिटा।"

विनोद कुछ और भी कहा चाहते थे कि इसी अवसर में उस गृह में एक अपर व्यक्ति ने, जिसके मुखपर आवरण (नकाब) पड़ा हुआ था, प्रवेश करके अभिवादन-पूर्वक महाराज के हाथ में एक पत्र दिया। पत्र लेकर उसकी मुहर देख दोनों प्रसन्न हुए और उसे खोलकर पढ़ने से उनके हर्ष की सीमा न रही।

पाठकों की इच्छा उस पत्र के अविकल वृत्तान्त जानने की होगी, हम भी उनकी इच्छा के प्रतिकूल नहीं हैं। अतएव कहते हैं सुनिए,—उस पत्र पर दिल्ली के बादशाह की मुहर थी। उस पत्र को शहंशाह गयासुद्दीन बलबन ने अपने दूत के हाथ महाराज के समीप प्रेषण किया था। वह पत्र फ़ारसी भाषा मे था, पर हम उसका अनुवाद अपने पाठकों को सुनाते हैं,—

"श्रील श्रीयुक्त श्रीमहाराज नरेन्द्रसिंह, वीरपुंगव, भार्गवपुराधीश्वरस्य कोमलकरकमलकुडमलेषु,

"मित्रवर,

"आपके पूर्वजों ने जिस घनिष्ठता से हार्दिक स्नेह-सहित मैत्री-पाश में बद्ध होकर चिरकाल तक दिल्ली के साथ सबंध निर्वाह किया था, आपसे भी उससे कुछ अधिक ही की आशा है। आपके पत्रों से सूबे बङ्गाल की दुर्दशा, जोकि अत्याचारी तुगरल के द्वारा पूर्णरूप से होरही है, सुनकर निरतर अन्तर-क्रोधाग्नि प्रज्वलित होती ही जाती है। यद्यपि दोबार हमारी सेना उस प्रतारक के विश्वासघात से पराजित होगई, पर आपके उत्तम परामर्श, और चित्त की स्वस्थता, तथा बङ्गाल की प्रजा के उद्धार के लिये जो हम दलबल-पूर्वक चले आते हैं, आपको पूर्व ही से इसकी सूचना देदी है; अतएव अब बिलंब का समय नही है। हम भी तीन दिन हुए, पटने से चल चुके हैं। अब हम शीघ्र पहुंचा चाहते हैं, अतएव आप अपने देश के भूम्यधिकारियों को उत्तेजित कर के सग्राम के साहित्य को उत्तमता और शीघ्रता से एकत्रित कीजिए। प्रथम और मतव्य स्थिर होने के, एक बार आप हमसे गुप्त रीति से मिलिए। सो भी किस स्थान पर? इसकी सूचना हमारा दूत आपको देगा; क्योंकि कई कारणों से पत्र में उस स्थल का नाम नहीं लिखा गया। आपकी मित्रता से हमें बहुत कुछ आशा है, जिसका पुरस्कार आप यथेच्छ लाभ कर सकते हैं! विज्ञेषु किं बहुनेति।

"आपका अभिन्नहृदय,
गयासुद्दीन बलबन।"

पत्र पढ़कर महाराज और मत्री के मुख पर हर्ष की ज्योतिर्मयी प्रभा चमकने लगी। हृदय आनदपूर्ण, और बल द्विगुणित होआया। उत्साह और आशा से वीरभुजा और नेत्र फड़कने लगे।

नरेन्द्र ने कहा,—"अब आशा होती है कि उस दुष्ट के सर्वनाश होने में विशेष विलब नही है।"

विनोद,—"सत्य है, किन्तु जबतक उसका सर्वनाश न करले, तब तक शत्रु से निश्चिन्त होना कदापि योग्य नही, क्योंकि आखेट यद्यपि खड्ग के नीचे हो, पर वह किंचिन्मात्र अवकाश पातेही चोट कर बैठता है। अतएव अभी तुगरल को धोखे में रखनाही कूटनीति का सिद्धान्त है।"

नरेन्द्र,—"तुमने यथार्थ कहा। हमारी इच्छा भी इसके प्रतिकूल नहीं है। इसका भार हम तुम्हें और तुम्हारे चचा (वृद्ध मंत्री) को देते हैं। बस जो उचित समझो सो करो। हम भी इससे पृथक् नहीं

होते, पर आलोचना का भार अभी कई कारणों से हम छोड़ते हैं।"

इसके अनंतर मन्त्री विनोदसिंह ने उस दूत से कहा,—"आप कृपाकर यहीं फर्श पर बैठें और अपने मुख का आवरण दूर करके यह बतलावें कि बादशाह सलामत ने किस स्थान पर मिलने का संकेत किया है ?"

यह सुन उस नकाबपोश ने कहा,—"महाशय, बड़े खेद का विषय है कि इस बात को मैं कुछ भी नहीं जानता कि बादशाह सलामत ने अपने दूत से ज़बानी क्या समाचार आपके पास भेजा था! क्योंकि मैं शाही दूत नहीं, वरन एक अपरिचित व्यक्ति हूं और इस समय आपलोगों के सामने अपना परिचय नहीं दिया चाहता हूं। बात यह है कि बादशाह के इस ओर आने का वृत्तान्त तो नव्वाब तुगरल को पहिलेही से ज्ञात है। इसके अतिरिक्त उसे उस दूत के आने का भी समाचार मिल गया, जिसके हाथ बादशाह ने यह पत्र आपको भेजा था। सो नव्वाब ने अपने गुप्तचरों से यह वृत्तान्त सुन उस दूत को बीच रास्ते ही में मरवा डाला, किन्तु दैवात् यह पत्र मेरे हाथ लग गया, जिसे मैंने सावधानी के साथ आपके पास पहुंचा दिया। अब आप जो कुछ इस पत्र मे लिखा है, उसी पर संतोष करें और दूत के पेट की बात जानने के लिये व्यर्थ उत्सुक न हों; क्योंकि उसके पेट की बात उसकी जान के साथ समाप्त होगई।"

उस नकाबपोश की इस विचित्र बात ने नरेन्द्र और विनोद,—दोनो को आश्चर्यसमुद्र में डाल दिया और वे दोनो एक दूसरे का मुंह देखने लगे।

कुछ देर के बाद नरेन्द्र ने उस अपरिचित व्यक्ति से कहा,—"क्या तुम बतला सकते हो कि यह पत्र नव्वाब के हस्तगत हुआ था, या नहीं ?"

अपरिचित,—"नहीं, श्रीमान् ! नव्वाब तो क्या, नव्वाब के उन घातकों की दृष्टि में भी यह पत्र नहीं पड़ा, जिन्होंने उस शाही दूत को बीच मार्ग में मारा है।"

नरेन्द्र,—"तब तो जान पड़ता है कि उस समय तुम भी वहीं उपस्थित थे ?"

अपरिचित,—"जीहां, श्रीमान् !"

नरेन्द्र,—"तो तुमभी नव्वाब के सेवकों में से हो ?"

अपरिचित,—"एक प्रकार, बात ऐसीही है ! "

नरेन्द्र,—"तो तुम्हे हम मित्र समझें या शत्रु ?"

अपरिचित,—"जैसा श्रीमान के चित्त में आवे वैसा समझें।"

यों कह वह सिर झुकाकर चलने लगा, तब उसे रोक कर नरेन्द्र ने कहा,–"भई ! तुम्हारी बातें आश्चर्य से भरी हुई हैं ! अस्तु,इस समय हम तुमसे यह जानना चाहते हैं कि क्या तुम हमें यह बतला सकते हो कि बादशाह का शिविर इस समय कहां पर अवस्थित है?"

अपरिचित,—" यह तो मुझे विदित नहीं है कि इस समय बादशाह की सेना कहा छावनी डाले हुई है, किन्तु इतना मैं अवश्य जानता हूं कि बादशाह-सलामत कुछ लोगों के साथ यहांसे थोडी दूर पर उस पहाड़ी क़िले में मौजूद हैं, जो 'मोतीमहल' के नाम से विख्यात है ।"

नरेन्द्र,–"अस्तु, तुम्हारी बातों पर हम विश्वास करते हैं और तुम्हें अपना मित्र समझते हैं, तथा इस उपकार के बदले में तुम्हें कुछ पारितोषिक भी दिया चाहते हैं ।"

"इसकी कोई आवश्यकता नही है,श्रीमान्!" इतना कहकर वह अपरिचित व्यक्ति तुरन्त वहां से चला गया और उसके जाने पर नरेन्द्र ने विनोद से कहा,—"प्रिय मन्त्रिवर ! यह कैसा गोरखधंधा है,कुछ समझ नही पड़ता ! क्या यह भी नव्वाब की एक चालाकी है!!!"

विनोद,—"कदाचित ऐसी ही बात हो ! किन्तु उस अपरिचित की बातें ऐसी स्वच्छ थीं कि उन पर हृदय अविश्वास करना नहीं चाहता; और इसका एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि इस लिफ़ाफ़े की मुहर ठीक है और इस समय के पहिले यह खोला नही गया था ।"

इसके बाद सेनापति गोबिन्दसिंह ने वहीं पहुंचकर अभिवादन किया और कहा,—"श्रीमान् ! बादशाह के आने के वृत्तान्त की जांच के लिये जो दूत यहांसे भेजे गए थे, उन में से दो अभी लौटकर आए हैं। उनकी ज़बानी यह समाचार मिला कि बादशाही सेना पटने से कूच कर चुकी है और बादशाह-सलामत कतिपय अनुचरों के साथ गुप्तरीति से उस पहाड पर'मोतीमहल'नामक क़िले में आकरठहरेहैं।"

गोबिन्दसिंह की बातों से नरेन्द्र और विनोद के जी से, उस अपरिचित व्यक्ति के ऊपर जो कुछ सन्देह था, दूर होगया, और नरेन्द्र ने गोविंदसिंह से कहा,–"देखो, अब तुम लड़ाई की तैयारी शीघ्रता से

करडालो। न जाने किस समय काम पड़जाय! और सेना जो बराबर भरती होती जाती है, उस पर खूब ध्यान रक्खो, जिसमें कोई कपट-बैरी न आने पावे।"

गोबिन्द,—"जीहां, श्रीमान्! ऐसा ही होना है और तैयारी दृढ़ता से होरही है, अब बिलंब नहीं है! गढ़ की दृढ़ता यथावत् होगई और विशेष आलोचना से कार्य्य होता है, जिसमें बैरी सेना में भर्त्ती न होने पावे।"

नरेन्द्र,—"वह तो वृद्ध मन्त्रीजी उत्तमता से देखते ही होंगे! उसका बिचार हम पीछे करेंगे। पर, देखना, सेनानी विश्वासघातक न निकल जायं।"

गोबिन्द,—"प्रायः हिन्दू सेनानी नियत होते हैं, और जो अन्यान्य जाति के लोग आते हैं, उनकी परीक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है, आगे ईश्वरेच्छा।"

नरेन्द्र,—"अस्तु, तुम सतर्क गढ़ की रक्षा करना, हम प्रातःकाल ही बादशाह के दर्शनार्थ थोड़ी सी सेना लेकर मोतीमहल को जायगे, उसका प्रबन्ध आज स्थिर रहै।"

गोबिन्द,—"जो आज्ञा; कितनी सेना श्रीमान के साथ जायगी?"

नरेन्द्र,—"सहस्र, पर खड्गसिंह अवश्य संग रहैं।"

गोबिन्द,—"अत्युत्तम, वे अवश्य रहेंगे।"

यों कहकर गोबिन्दसिंह ने प्रस्थान करना चाहा, पर,—"और सुनो" कहकर और गोबिन्द को ठहराकर नरेन्द्र ने कहा,—

"हमारी यात्रा का वृत्तान्त कोई न जान सकै, केवल वेही, जो संग जायगे, जानै।"

"जो आज्ञा" कहकर गोबिंदसिंह ने प्रस्थान किया, ये यहां के सेनानायक थे।

बिनोद,—"अब चलकर वृद्ध मन्त्रीजी से भी अनुमति लेलेनी चाहिए।"

नरेन्द्र,—"अवश्य! हमभी चलते है।"

बिनोद,—"जैसी इच्छा, चलने में क्या हरज है।"

नरेन्द्र,—"तो चलो, मन्त्रीजी के समीप चलें।"

बिनोद,—"चलो। देखो! नव्वाब को यही उत्तर दिया गया है।"

यों कह उन्होंने एक पत्र नरेन्द्र को दिखलाया, जिसे नरेन्द्र ने

बिचारपूर्वक पढ़ा और सहर्ष कहा,—

"अत्युत्तम! वह पाजी इसीके योग्य है,'शठे शाठ्यं समाचरेत्'।"

अनतर वृद्ध मन्त्री से परामर्श स्थिर करके बिनोद को सङ्ग लेकर नरेन्द्र ने प्रातःकाल यात्रा की थी। इसी यात्रा में मृग का पीछा, महाराज का अतर्धान होना, यवनो का बध, सरला और मल्लिका का साक्षात् आदि हुआ था। पाठक अब आनुपूर्विक सब घटनाओं को समझ गए होंगे।

यहा पर हम उस पत्र के आशयमात्र को पाठकों पर प्रगट करके इस परिच्छेद को समाप्त करेंगे।

तुगरल के उस नीचतापूर्ण पत्र के उत्तर में, जो कि महाराज नरेन्द्रसिंह की ओर से दिया गया था, और जिसका इगित अभी ऊपर किया जा चुका है, जो कुछ लिखा था, उसका आशय केवल यही था कि,—"श्रीमान् की प्रत्येक आज्ञा पर मैं भली भाति बिचार कर रहा हूं, आशा है कि दोही एक सप्ताह के अभ्यन्तर मैं स्वय श्रीमान की सेवा मे उपस्थित होकर श्रीमान को सन्तोष-जनक उत्तर से प्रसन्न करने में कदाचित अपने को समर्थ पाऊगा;" इत्यादि, इत्यादि।

नवां परिच्छेद.

पूर्व घटना।

विधिर्बलीयान् बलिनाम्।

(विष्णुपुराण)

इस उपन्यास में सन् १२७६ ई० की उस भयङ्कर घटना का उल्लेख किया गया है, जिस समय बङ्गदेश में भयङ्कर विप्लव उपस्थित हुआ था। उस समय दिल्ली के तख़्त पर सदाशय बादशाह गयासुद्दीन बलवन था, और बङ्गाल के नव्वाब की गद्दी महा दुराचारी नव्वाब तुगरलखां के हाथ में थी, जिसका दूसरा नाम मगसुद्दीन था।

उस समय भागलपुर, में जिसका संस्कृतग्रंथों में भार्गवपुर नाम लिखा है, एक प्रबल राजवंश राज्य करता था। वहांके उस समय के वर्त्तमान महाराज नरेन्द्रसिंह, का नाम और कुछ परिचय हम पूर्व परिच्छेदों में दे आए हैं; यहां पर उनके विषय में कुछ विशेष विवरण के लिखने की हमारी इच्छा है।

उस समय भागलपुर नगर एक पक्की और दृढ़ शहरपनाह के अन्दर बसता था। वहांके महाराज का सुदृढ़ किला गङ्गा किनारे बना हुआ था और उस नगर के महाराज महेन्द्रसिंह, जिनकी अवस्था उस समय केवल पचास वर्ष की थी, राज्य करते थे।

उसी सन्, अर्थात् १२७६ ई० मे एक दिन प्रातःकाल उठकर नरेन्द्रसिंह ने अपने पलङ्ग पर एक पत्र पाया, जोकि उनके पिता के हाथ का लिखा हुआ प्रतीत होता था। उस पत्र में प्रौढ़ महाराज ने अपने युवराज (पुत्र) नरेन्द्र को केवल इतना ही लिखा था कि,—"एकाएक चित्त में वैराग्य के आजाने से हम अपनी स्त्री (तुम्हारी माता) के सहित वानप्रस्थ आश्रम का अवलंबन करके वन को जाते हैं। अतएव तुम शुभ मुहूर्त्त में राजसिंहासन पर बैठ कर धर्म और नीति के साथ प्रजा का पालन करना।"

एकाएक पिता के अन्तर्धान होने और इस आशय के पत्र के पाने से नरेन्द्रसिंह अत्यन्त मर्माहत हुए और उन्होंने अपने पिता

का बहुत अनुसंधान किया, किन्तु जब कहीं उनका पता न लगा तो प्रौढ़ मन्त्री वीरेन्द्रसिंह ने इन्हें राजसिंहासन पर बैठाया; किन्तु दोही मास के भीतर वीरेन्द्रसिंह भी अपनी पत्नी और कन्या के सहित अन्तर्धान होगए; तब उनके छोटे भाई धीरेन्द्रसिंह को मंत्री का पद दिया गया, पर वे भाई के सपरिवार अन्तर्धान होने से ऐसे भग्नहृदय होगए थे कि उन्होंने अपने भतीजे (वीरेन्द्रसिंह के पुत्र) विनोदसिंह को मंत्री बनाया और समय समय पर अपनी उत्तम सम्मति से वे उनकी सहायता करते रहे।

महाराज महेंद्रसिंह और मन्त्री वीरेन्द्रसिंह के अन्तर्धान होने के कुछ ही दिन पीछे राज्य के प्रधान सेनापति बीरसिंह ने भी महाराज की नौकरी छोड़ दी थी और वह नव्वाब तुगरलख़ां की सेना में जाकर भर्ती होगया था।

विंध्य के पर्वत, पूर्व मे भागलपुर ज़िले तकही हैं; वहांसे वे दक्षिण को मुड़गए हैं। उसी पर्वत पर, जिसका नाम मंदरगिरि है, भागलपुर से बीस बाईस कोस दूर एक छोटासा, पर बहुत ही दृढ़ क़िला बना हुआ था, नाम उसका मोतीमहल था। वह क़िला दिल्ली के बादशाह के अधिकार में था। यहीं आकर बादशाह ने गुप्तरीति से महाराज नरेन्द्रसिंह को बुलाया था, जिसका वृत्तान्त हम ऊपर लिख आए हैं।

भागलपुर से पूर्व-दक्षिण को कुछ झुकती हुई, साठ मील दूर, गङ्गा के दहने किनारे राजमहल नाम की बस्ती है। वहा पर उस समय गङ्गाकिनारे क़िला और नव्वाब के अत्युत्तम बिलासभवन बने थे, जिनका अब खण्डहर भी भरपूर नहीं दीख पड़ता। उस समय नव्वाब तुगरलख़ां वहीं (राजमहल में) था और भागलपुर तथा राजमहल के बीच में उसकी सेना छावनी डाले, बादशाही सेना से सामना करने के लिये पड़ी थी।

बादशाह से मिलने जाकर महाराज नरेन्द्रसिंह मृग का पीछा करके जिस जङ्गल और गिरिगुहा के समीप पहुंचे थे, वह स्थान भागलपुर से दो मञ्ज़िल दक्षिण, घने जङ्गलसे घिरा हुआ मदरगिरि पर्वत था, जिसके विषय में पुराणों मे लिखा है कि,—'इसी पर्वत से समुद्र मथा गया था।' उसी पर्वतारण्य में, जहांसे मोतीमहल नामक क़िला दस कोस दक्खिन था, महाराज नरेन्द्रसिंह ने अपने

मन्त्री विनोदसिंह के साथ रात बितानी चाही थी, किन्तु वहांसे नव्वाब के अनुचर जिस जगह उन्हें उठा ले गए थे, वह स्थान उस पर्वत और भागलपुर के बीच में था और वहांसे आठ कोस दूर पूर्व की ओर झाड़ी से घिरा हुआ वह टीला था, जिसमें महाराज सरला और मल्लिका के अतिथि हुए थे। और वह स्थान भी भागलपुर और उस पर्वत का मध्यवर्त्ती ही था, जहां पर यवनसेना से मन्त्री विनोदसिंह की मुठभेड़ हुई थी।

पाठक, यहांतक कुछ आनुपूर्विक घटना का वर्णन करके अब हम पुनः प्रकृत विषय के वर्णन करने में प्रवृत्त होते हैं; परन्तु एक बात का और कह देना अत्यन्त उचित समझते हैं। वह यह है कि जिस समय महाराज नरेन्द्रसिंह मंत्री विनोदसिंह के साथ उठकर वृद्ध मंत्री महाशय से मिलने के लिये उस कमरे के बाहर होगए थे, उसके कुछ ही क्षण उपरान्त उस महल की दीवार में एक चोरदर्वाजा प्रगट हुआ और उसके अन्दर से एक व्यक्ति निकल और महाराज के पलङ्ग के ऊपर कोई वस्तु को रख, पुनः उस चोरदर्वाज़े के भीतर जाकर द्वारसहित अन्तर्धान होगया! किन्तु पाठक, यह वही व्यक्ति था, जिसने अभी कुछ घंटे पूर्व बादशाही पत्र को नरेंद्रसिंह के हाथ मे लाकर दिया था।

दसवां परिच्छेद.
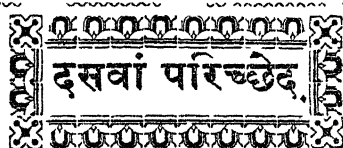
बङ्गाल पर चढ़ाई।

"प्रवर्त्तता प्रकृतिहिताय पार्थिवः।"

(भारविः)

कामरूप के घोर युद्ध मे तुगनखां परास्त होकर बंदी हुआ। वह बङ्गाले का दुर्वृत्त और अत्याचारी नव्वाब था, पर उस पाप का फल उसे शीघ्र मिला। वह उसी कैद में सन् १२५८ ई० मे मारा गया। इसके कुछ काल के उपरान्त अमानखां गौड़ का सूबेदार हुआ। उसके नायब का नाम तुगरलखां था। यद्यपि अमीन की इस पर विशेष कृपादृष्टि रहती थी, पर लोभ पाप का मूल है; सो, लोभ के वशवर्त्ती होकर विश्वासघातक तुगरल ने अमीन के बध करने का सङ्कल्प किया। इसने दिल्ली के प्रसिद्ध बादशाह गयासुद्दीन बलवन की असाध्य रुजार्दित सुनकर अपना अमूल्य अवसर नष्ट नहीं किया और प्रजारञ्जक अमीनखां का रात्रि के समय सोते हुए अपने हाथ से बध किया। लोग कहते हैं कि प्रथम वह ऐसा अमीनखां के विरुद्ध हुआ कि उसे कारागार में डालकर और अपना नाम मगसुद्दीन रखकर सन् १२७६ई० में बङ्गाले का स्वाधीन नव्वाब हुआ और अपने को स्वतन्त्र बादशाह मानने लगा। जो हो, पर उसने जो अमीन की जान छोड़ी होगी, यह निश्चय नहीं होता।

इसने बङ्गाले मे ऐसा अत्याचार मचाया कि सब प्रजा "त्राहि त्राहि" करने और अधिकांश प्रजा देश छोड़ कर भागने लगी। बङ्गाले के राजाओं ने इसे स्वयं दमन करने की क्षमता न रख, इसके विरुद्ध दिल्लीश्वर को उत्तेजित किया था।

दिल्ली के बादशाह ने उसे जीतने को क्रमशः दोबार सेना भेजी थी, किन्तु विश्वासघात करके दोनोंबार तुगरलखा जीत गया था। वह शृगाल होकर भी शेर के ऐसे पराजय पर महा अहंकृत हुआ। दिन दिन नए नए अत्याचार होने लगे। सतीजनों का सतीत्व, धनिकों का धन, मानियों को मान, मानो इसकी नानी की मीरास थी।

यह यथेच्छ सर्वस्वापहरण करने लगा। इसके प्रश्रय से बङ्गाले में दस्यु, बदमाश और वेश्याओं का एकान्त प्रताप चमकने लगा। आबालवृद्धवनिताओं के हृदय-विदारक आर्त्तनाद से बङ्गदेश गूंज उठा। यहाँतक कि बङ्गीय स्वाधीन राजालोग भी इसके अत्याचार से बिकल होने और बार बार दिल्लीपति से प्रार्थना करने लगे। अन्ततोगत्वा निरुपाय होकर बादशाह गयासुद्दीन बलबन ने कई हजार सैन्यदल लेकर स्वयं तुगरल के सर्वनाश के लिये बङ्गाले पर चढ़ाई की।

दोबार तुगरल जीत चुका था, इससे वह महा अहङ्कारग्रस्त होगया था। दिल्लीश्वर के आगमन का समाचार सुनकर वह अग्निदत्त घृताहुति की भांति और भी उत्साहित होकर दस्युवृंदों को अपनी सेना में भरती करके सेना की संख्या बढ़ाने और अतिशय प्रजापीडन करने लगा। इसने अपने पक्ष समर्थन के लिये बङ्गाले के प्रधान प्रधान राजाओं को भी भय, लोभ, साम, दाम, भेद, उत्पीडन आदि दिखाया था; पर कहींसे भी उचित आशामय उत्तर न मिलने से वह और भी क्षुधित व्याघ्र की न्याईं अत्याचार करने में प्रवृत्त हुआ था। इसकी सेना में अधिकांश दस्युदल भरा था। अतः वे (दस्यु) यथेच्छ प्रजा का सर्वनाश करके अपनी पशुवृत्ति चरितार्थ करने में त्रुटि नहीं करते थे। तुगरलखां भी अपना कार्य्य लेने के अर्थ उन्हें यथेष्ट प्रश्रय दे दे कर बङ्गाले के उत्सन्न करने के लिये एक प्रकार कृतसङ्कल्प होगया था।

पाठकों को विदित होगा कि अपने कार्यसाधन के लियेही इसने भागलपुर के महाराज को पत्र भेजा था, पर यथेच्छ उत्तर न पाने और दूत के मुख से बादशाह के दूत का आगमन वृत्तान्त सुनकर वह महा-क्रुद्ध हुआ और उसे मार्गही में मरवाडाला था। तदनंतर किसी प्रकार महाराज नरेन्द्रसिंह के बध का उपाय अन्वेषण करने लगा। उसके गुप्तचर तो प्रथमही से घात में लगे थे, सो महाराज जब आखेट को गए थे तो इसने सुनकर रात्रि के समय उन्हें घेर करवाया था, पर कुछ फल नहीं हुआ; उलटे उसीके पक्षी मारे गए, इससे तुगरल और भी उत्साहित होकर प्राणपण से चेष्टा करने लगा।

सरला से बिदा होकर प्रातःकाल महाराज बादशाह से मिलने के लिये पुनः यात्री हुए थे, जिसका वृत्तान्त पाठक जान चुके हैं।

ग्यारहवां परिच्छेद.

आशा !

"आशा सौख्यकरी पुनर्भयकरी आशा पर दैवतम् ।"
(भारततत्त्व)

छः सौ वर्ष से कुछ अधिक हुआ होगा, जिस समय भागलपुर से कई कोस की दूरीपर एक ग्राम गङ्गा-किनारे बसता था। ग्राम छोटा होनेपर भी रमणीय और मनोहर था। दो शस्यपूर्णक्षेत्र, एक पार्श्व में भागीरथी, और दूसरे किनारे सामान्य बन था। मध्य में ग्राम अपनी शोभा विस्तार करके स्थित था। इस ग्राम में अधिकांश ब्राह्मण, क्षत्रिय और कायस्थों की स्थिति थी। इतर कई नीच जाति, गोप तथा मत्स्य-जीवी भी रहते थे। यद्यपि मुसल्मानों के उत्पीडन से देश में महा हाहाकार होरहा था, अनेक ग्राम मरुभूमि में परिणत हुए थे, किन्तु इस ग्राम की दशा उन्नत नहीं तो अवनत भी नहीं थी, न दुर्दान्त पठानों की क्रूरदृष्टि ही इधर विशेष पडती थी। क्यों ? इसे जगदीश्वर की कृपा भिन्न और क्या कहा जा सकता है ? इस ग्राम में बीस पचीस गृह पक्के ईटों से बने दो तीन मरातिब के थे और अन्यान्य सभी घर कच्चे, पर परिष्कृत थे। कच्चे घरों में भी कई दो मरातिब के थे।

प्रातःकाल और संध्या समय भागीरथी के तीर अधिकांश युवक-युवतियो, तथा स्नानार्थियों का जमघट होता था। स्त्रियां जो जल लेने के लिये आती थीं; वहांपर बैठकर परस्पर कथोप-कथन करती थीं। एक दिन कई स्त्रियां परस्पर बातें कर रही थीं।

उनमे से एक ने कहा,—"हां,री ! ललिता ! मल्लिका वसी बुढ़िया की लडकी है ? अहा ! कैसी सुशील और सुन्दर लड़की है ! ऐसी लक्ष्मी तो राजा की रानी होनी चाहिए, सो दरिद्रिन ! ! !"

ललिता,—"ठीक है श्यामा ! हमलोगों को मल्लिका बहुत चाहती है। जाने पर जलदी आने नहीं देती। कई दिनों से सुशीला जो आई है, उसे मल्लिका अपनी बहिन बताती है। भई ! बड़ी बात हुई जो लुटेरों के हाथ से यह छूटी।"

श्योमा,—"हां री, चपला ! कदाचित् उसीके विरह में मल्लिका व्याकुल होरही है, जिसने उसे छुड़ाया है। खैर, जाने दो इन बातों को; संध्या हुई, घर चलो।"

अनतर सब गृह की ओर अपना अपना घड़ा उठाकर चली गईं।

चाहे किसी कारण से हो, ग्रामवासियों में परस्पर बड़ा ऐक्य और सौहार्द था। कदाचित् इसी कारण से कि,—'कहीं दस्युगण आक्रमण न करें,' सभी विशेष सतर्क और सशस्त्र रहते थे, और एतदर्थ एकाएक दस्युगण भी ग्राम में प्रवेश करने का साहस नहीं करते थे। इसीसे ग्राम की रक्षा थी और ग्रामीणो को सुख था।

मध्याह्न के समय एक परिष्कृत प्रकोष्ठ में चत्वारिंशत्-वर्षीया एक प्रौढ़ा कुशासन पर पद्मासन से बैठी थी। उसका अङ्ग गौर, शरीर किंचित् स्थूल तथा सुंदर था। केश बिलकुल काले और मुख अलौकिक तेजःपुंज से देदीप्यमान था। चारों ओर पूजा की सामग्री और सन्मुख शिवलिंग रक्खा था। धूप जलती और दीप बलता था। दक्षिण ओर काष्टासन पर विष्णुसहस्रनाम आदि की कई पुस्तकें धरी थी। प्रौढ़ा से कुछ दूरी पर सन्मुख एक परम रूपवती युवती भूमि में जानु पतित कर हाथ बांधे, तथा सिर नवाये,नम्रता से बैठी थी। प्रौढ़ा सिर झुकाए समुज्वल नेत्रों से अश्रु-विमोचन करती और ठढी सांसें भरती थी। युवती की दशा भी इससे न्यून नहीं थी। दोनो मौन और बिचार में मग्न थीं। पार्श्वस्थ गृह में दो अपर बालिकाएं बैठी हुई धीरे धीरे परस्पर बातें करती थीं। दोनो समवयस्का थीं, पर उनमें एक अतिशय प्रतिभाशालिनी और देखने में कुछ बड़ी थी। वह दूसरी बाला से अपनी दृष्टि बचाकर उत्सुक चित्त से बाहरवाली युवती की ओर देखती, और उसी ओर कर्णपात करके कभी कभी दीर्घ निश्वास लेती थी। उसकी आंखों मे भी कई बार अश्रुदेव ने दर्शन दिया था, पर उसने दूसरी बालिका की दृष्टि बचाकर अञ्चल द्वारा उनका मार्जन किया था।

क्षण काल के अनतर युवती ने सविनय निवेदन किया,—"मां ! क्या दासी की प्रार्थना स्वीकृत न होगी ? मेरे ऐसे मंद भाग्य !"

प्रौढ़ा,—"सरला! तू मुझे मल्लिका से भी अधिक प्यारी है, परन्तु—"

युवती का नाम सरला था उसने रोककर कहा,—"जिसने ऐसा उपकार किया, वह किञ्चित भी दया का पात्र नहीं होसकता ?

प्रौढ़ा,—"सरला! स्वामी का वैरनिर्यातन किए बिना, क्या मैं स्थिर होसकती हूं? किन्तु उपाय क्या है? यदि उन्हें करना होता तो वे स्वयं क्या आजतक दुष्ट यवन से बदला न लेते? तब मैं व्यर्थ क्यों किसीको मुख दिखलाऊं, और बिनय करूं? वीरनारी क्या किसीसे कातरस्वर से अपनी सहायता के लिये अनुरोध करतीहै?"

सरला,—"तब मल्लिका की क्या दशा होगी?"

प्रौढ़ा,—"उसका मन परिवर्त्तन नहीं हो तो, इसका मुझे भी महाशोक है।"

सरला,—"हा! वह किसी प्रकार अपनी आशा से विमुख नहीं होती, और अहर्निशि उसी युवक के ध्यान में डूबी रहती है।"

प्रौढ़ा,—"सरला! मेरी बुद्धि इस समय नितान्त घबरा गई है। अस्तु,मै मल्लिका को प्राण रहते कभी कष्ट नहीं देसकूंगी;अतएव यदि उसकी एकान्त इच्छा होगी, तो मैं आत्मघात करके उसके सुख का पथ प्रशस्त करदूंगी, क्योंकि जीवित रहते तो मैं उसी व्यक्ति को मल्लिका समर्पण करूंगी, जो उस यवन का बध करेगा।"

सरला,—"मा! मल्लिका की भी यही इच्छा है; वह कदापि आपकी इच्छा के विरुद्ध नहीं है।"

प्रौढ़ा,—"तब तू क्या चाहती है?"

सरला,—"मां! महाराज आपके वृत्तान्त को नहीं जानते,उन्हें इस रहस्य को ज्ञात करा देने से वे तत्क्षण आपकी प्राणपण से सहायता करेंगे, और यही मल्लिका भी चाहती है। इसमें पुत्री की इच्छा और आपका मनोरथ भी पूर्ण होगा।"

प्रौढ़ा,—"सरला! मैं क्या उनकी प्रार्थना करूंगी?"

सरला,—"देवी! जरा ध्यान तो दो! जिसने ऐसे सङ्कट की दशा में पहुंच कर हमलोगों का उद्धार किया,—अहा! जिसके मंत्री ने आपकी भगिनी की कन्या की दस्युदल से रक्षा की, वे क्या इस कार्य्य को न कर सकेंगे? वे क्या ऐसे उपकारी होने पर भी दया के पात्र नहीं हैं?"

प्रौढ़ा,—"तो क्या मैं उनसे अपने कार्य्य-साधन का अनुरोध और बिनय, जो आजतक किसीसे मैंने नहीं किया, कातरस्वर से करूंगी? यह कदापि नहीं होसकता। सरला तू! क्या मुझे व्यस्त करके प्रतिज्ञा से च्युत कराया चाहती है?"

सरला,—" मा ! सो यदि तुम्हें कहना न पड़े, और वे आकर स्वयं ही इस कार्य्यसाधन की आज्ञा आपसे मागें, और अनुनय-विनय करें तो इसमें क्या क्षति है? और ऐसा करने में किस प्रकार आपकी प्रतिज्ञा भंग होती है ?"

यह सुन प्रौढ़ा, क्षण काल तक नीरव होकर विचार करने लगी, और सरला आशा से उसकी ओर देखने लगो। और अपर बालिका जहा बैठी थी, वही बैठी बैठी आशा से बार बार सरला की ओर देखती और,—'सरला कहीं यह बात न जानले,' यह बिचार, मुख फेर कर अंचल द्वारा अश्रुमार्जन करती थो। वह बालिका और कोई नहीं, मल्लिका ही थी, मल्लिका की देखादेखी, झांका-ताकी, सरला भी अज्ञान बनकर देखती और मन ही मन उसके मनोरथ पूर्ण करने की अभिलाषा से अपनी सहायता के लिये करुणामय जगदीश्वर को पुकारती थी।

प्रौढ़ा ने अचल से अश्रुमार्जन किया और दीर्घनिश्वास लेकर कहा,—"सरला ! आज मैं तेरी वाक्यचातुरी के आगे परास्त हुई ! अस्तु, कन्या के सौभाग्य और तेरी बात रखने के लिये मैंने सब स्वोकार किया।"

यों कहकर प्रौढ़ा निम्नमुखी हुई और सरला के आनद की सीमा न रही। उसने मानो आकाश के चद्रमा को करतल से पकड़ लिया ! उसने मल्लिका की ओर देखा तो उसके मुख पर भी आशा के संग आनन्द के बिशद चिन्ह चमकने लगे थे।

यह देखकर सरला का रोम रोम हर्षित होगया। उसने प्रणत होकर कहा,—"मां ! आज्ञा हो तो मैं अपने काम के लिये जाऊ।"

इस पर "अच्छा" कहकर प्रौढ़ा पूजा में निमग्न हुई और सरला वहांसे उठकर मल्लिका की ओर गई। पाठकों ने क्या इनलोगों को चीन्हा?

सुनिए, यह प्रौढ़ा ही मल्लिका की माता थी, जिसका विशेष वृत्तान्त हम आगे चलकर लिखेंगे।

बारहवां परिच्छेद.

सखी सङ्ग ।

"सखीजनानामिह चारु वार्त्ता ।"

(कन्दर्पविजय)

सरला का हृदय आनन्द में निमग्न होकर नृत्य करने लगा। उसके हृदय में प्राणोपमा मल्लिका का प्रसन्न और करुणामय मुख अङ्कित हुआ । वह उस सुख से एक मात्र धैर्यच्युत होकर विशेष काल तक प्रौढ़ा के समीप नहीं बैठी और अभिलाषा पूर्ण होतेही महामुदित मनसे मल्लिका के प्रकोष्ठ की ओर द्रुतगति से धावित हुई । उसने देखा कि मल्लिका परमानंदित होकर गृह के मध्य इधर उधर पद चालनकर रही थी ।

सरला के प्रविष्ट होतेही वह लज्जामय भाव से संकुचित होकर खड़ी होगई और सरला ने चार चक्षु होतेही एक स्निग्ध कटाक्ष पात करके कहा,—"मल्लिका !"

मल्लिका ने हँसकर परिहास से कहा,—"मालती !"

सरला,—"जुही, चमेली, गुलाब, केतकी आदि फूलों की माला बनाकर गले में डाल लो, जिसमें जो की कोई बात बाकी न रहै ! ऐं ! आज मैं मालती बन गई ? हूं ! ! !"

मल्लिका,—"तू सरला होने पर भी बड़ी कुटिला है ।"

सरला,—"भला मल्लिका से बढ़कर संसार में दूसरा कौन कोमल है ?"

मल्लिका,—"आज तुझे कैसा रङ्ग चढ़ा है ?"

सरला,—"हलका, गुलाबी ! अच्छा अब मैं जाती हूं !"

मल्लिका,—"कहां ! कहां !"

सरला,—"तुम्हारे गुणनिधि को बुलाने । आज कुछ पारितोषिक दोगी न ?"

यह सुन मल्लिका ने लज्जित होकर मंदस्मित करते करते सरला को झोंका देकर कहा,—"चल ! दूर हो सामने से ।"

सरला,—"वाह रे, नवाबी ? तूही हटजा, जो ऐसी छौंक आती

हो तो! मुझे क्यों ढकेलती है!"

मल्लिका,—"सरला! आज तुझे कैसी कैसी बातें सूझती हैं?"

सरला,—"वैसी, जो तेरे मन में हैं!"

मल्लिका,—"चल, वाह! मेरे मन में क्या है? झूठा कलङ्क न लगा!!!"

सरला,—"वाह री, गङ्गाजल! तो, ले मुझे क्या पड़ी है, जो व्यर्थ अपने प्राण दूं! मल्लिका! अपने चाद से भेंट न करेगी?"

मल्लिका,—'तू मरे तो मैं बचूं।"

सरला,—"मेरे मरने से तू प्रसन्न होगी?"

मल्लिका,—"नहीं!"

सरला,—"फिर मुझे कोसती क्यों है! अच्छा, जो मैं मरही गई तो तू क्या करेगी?"

मल्लिका,—"कोने में बैठकर 'हायसखी!' कहकर अच्छी तरह रोऊंगी।"

सरला,—"तो फिर कोसती क्यों है।"

तब तो—"भखमारा"—कहकर मल्लिका सरला के गले से लपटकर हँसने लगी। सरला के स्नेहोद्रेक की सीमा न रही। हास्यध्वनि उसका मुख विदीर्ण करके निकल पड़ी।

सरला ने उसका मुख चुंबन करके हाथ थाम कर कहा,—"देखो, सखी! जो महाराज से मिलना हो तो चुपचाप जागती रहना, मैं आधी रात के समय उन्हें सङ्ग लेकर आऊंगी।"

मल्लिका ने भ्रूभङ्गी और नेत्र सञ्चालन तथा ग्रीवा घुमाकर कहा,—"अरी! मुझे किसीसे क्या काम है?"

सरला जन्म से मल्लिका के संग थी, और मल्लिका को सरला कैसा चाहती थी, यह भी पूर्णरूप से प्रकट होता जायगा, तब सरला जो मल्लिका के हृदय से अभिज्ञ थी, इसमे क्या संदेह है? उसने छल से कहा,—"मल्लिका! तेरे ही लिये मैं प्राण देती हूं और इतना प्रबन्ध कर रही हूं; पर तू ही जब इन बातों से अनिच्छा प्रकाश करती है, तो मुझे क्या पड़ी है, जो मैं व्यर्थ माथा खाली करूं? ले, अब मैं न जाऊंगी।"

सरला मल्लिका का कोमल हृदय जानती थी। उसने मल्लिका के हृद्गत भाव के जानने के लिये इस प्रकार ये बचन कहे थे और

अपना ऐसा कृत्रिमभाव प्रकाश किया था, पर मल्लिका को यह निश्चय हुआ कि,—'अब यह कदापि महाराज के समीप उन्हें बुलाने के लिये नहीं जायगी!' इस बात को सोचकर मल्लिका महा क्षुभित होकर निज लज्जा को सहस्रों धिक्कार देने लगी; किन्तु लज्जा का तिरस्कार करके भी उसे (लज्जा को) एकाएक त्याग नही सकी। उसने अपने मन का भाव भी सरला से छिपाना चाहा था, पर भस्म से आच्छादित अग्नि कहीं छिपती है ?

सरला ने हँसते हँसते मल्लिका का हाथ थामकर कहा,-"सखी! अब मैं न जाऊंगी, सदेह न करो, प्रसन्न होजाओ।"

ये वाक्य सरलहृदया मल्लिका के कोमल मन में बाण से लगे, उसने नीचा मुख करके अर्धस्फुट स्वर से कहा,—"क्यों, जाती क्यों नहीं ? कौन नाहीं करता है ?"

सरला,—"तुम।"

मल्लिका,—"अच्छा, जाओ, अब नाहीं न करूंगी।"

सरला ने 'जाओ' यह सुनते ही मल्लिका को गले लगाकर कहा;—"प्यारी, सुशीला से यह सब अभी मत कहना।"

बात यह थी कि जिस समय सरला प्रौढ़ा के पास से उठकर मल्लिका के पास आई थी, उस समय कुछ समझ बूझकर सुशीला नाम की दूसरी बालिका, जो मल्लिका के पास थी, वहांसे आपही आप टल गई थी।

मल्लिका,—"अच्छा।"

सरला,—"देखो, सचेत!!! जागती रहना।"

इस पर "जा जा," कहकर मल्लिका ने अट्टहास्य किया, सरला भी स्थिर नहीं रह सकी। उसकी भी हास्यलहरी मल्लिका की हास्यलहरी में मिल गई।

मल्लिका ने उत्तम समय देख कर कहा,—"सरला सुशीला के लिये विनोद को भी संग लाना।"

मल्लिका सब बातें कहने नहीं पाईथी कि उसी घर में सुशीला ने पुनः प्रवेश करते करते हँसकर मल्लिका को लक्ष्य करके कहा,—"और मल्लिका के लिये नरेन्द्र को! क्यों ? अब ठीक हुआ न ?"

सरला महा चतुरा थी, हास्यरस में भी वह पारङ्गत थी,-सो उसने रस बढ़ाने के लिये सुशीला को देखकर कहा,—"और अपने

लिये भी एक नया जोड़ा लाऊंगी!"

मल्लिका,—"छिः! मरजा तू!!!"

सुशीला,—"वाह री सरला, बलिहारी! तू धन्य है!"

सरला,—"क्यों क्यों, क्या हुआ?"

सुशीला,—"बस,बस! भर पाया। तुझसे अरझ कर कौन जीतेगा?"

थोड़ी देर तक सब हँसतीं, और एक दूसरी के अङ्गों में लपटती रहीं। वह मनोहर दृश्य जिन्होंने नहीं देखा है, उन्हें लेखनी द्वारा समझाने की चेष्टा करना विडम्बनामात्र है। अनंतर सरला ने धीरे से कुछ मल्लिका के कान में कहा, और वहांसे वह चली। यद्यपि सुशीला ने उसे पुकारा; पर,"आती हूं;"कह कर सरला चली गई।

उसका ऐसा व्यवहार देखकर सुशीला कुछ मन में क्षुभित हुई, यह जान कर मल्लिका ने कहा,—"सुशीला! चल, उद्यान में चलें।"

सुशीला,—"चलो, पर मालाग्रंथन करोगी न?"

मल्लिका,—"क्यों, री! अब तू इतनी बढ़गई? एं! ऐसा जी घबराता था तो सरला के संग ही क्यों न चली गई?"

सुशीला लज्जित होकर कुछ न बोली, और मल्लिका उसका हाथ पकड़ कर उद्यान की ओर चली। जिस घर में मल्लिका रहती थी, उसीमें एक छोटासा उद्यान और पुष्करिणी थी। चारो ओर से प्राचीरवेष्टित उद्यान में दोनों गईं। पाठक! मल्लिका तो मंदिर में थी,यहां कैसे आई? और यह सुशीला कौन है? तथा वह प्रौढ़ा का क्या वृत्तान्त है? अच्छा अभी धैर्य रखिए। समय पाकर सब आपही आप प्रगट होजायगा।

किन्तु यहां पर इतना हम अवश्य लिख देना उचित समझते हैं कि जब उस मंदिर में सरला और मल्लिका अत्याचारी यवनों के हाथ पड़ी थीं, और वे दोनो उन्हीं दुराचारी यवनों की कैद में पड़ी हुई थीं, तो उन्हें किसी विचित्र शक्ति, या किसी व्यक्ति ने उस कैद से छुड़ाया था। उसी समय सुशीला भी, जो मल्लिका की नाते में बहिन थी, और दुर्भाग्य से यवनों के हाथ लग, उनकी कैद में पड़ी हुई थी, एक व्यक्ति द्वारा छुडाई गई थी। ये व्यक्ति सचमुच नरेन्द्र और बिनोद ही थे, परन्तु इन्होने किसकी सहायता से और कब, तथा कहांसे उन बालाओं का क्योंकर उद्धार किया था, यह बात हम आगे चलकर प्रगट करेंगे।

तेरहवां परिच्छेद.

उपदेश ।

"हितं मनोहारि च दुर्लभ वचः ।"

(भारवि)

वृद्ध मन्त्रीजी से मंत्रणा करके [जिस समय महाराज अपने उसी शयनमंदिर में पहुंचे, जिसमें कि अभी कुछ घंटे पूर्व उन्होने अपने प्रिय मंत्री बिनोदसिंह के साथ बहुत कुछ मन्त्रणा की थी, उस समय रात आधी के ऊपर पहुंच चुकी थी और घोर निस्तब्धता चारोओर अपना स्वतन्त्र राज्य बिस्तार किए हुई थी ।

उस शयनमंदिर में स्वर्णप्रदीप में सुगंधियुक्त तैल जल रहा था, जिसके उज्वल और स्वच्छ प्रकाश से सारा शयनमंदिर चमचमा रहा था; और वह एक बहुतही स्निग्ध सुगंधि से आमोदित हो रहा था । उस मंदिर में प्रविष्ट होकर महाराज नरेन्द्रसिंह ने बिना किसी दास की सहायता के ही अपने वस्त्र बदले और शयन करने योग्य वस्त्र पहिर कर उन्होंने पास ही सगमर्मर की चौकी पर रक्खे हुए जलपात्र में से थोडासा जल लेकर उसे पीया और फिर दो चार बीड़े पान के खाकर वे अपने पलङ्ग की ओर झुके; किन्तु उस पलङ्ग पर दृष्टि पड़तेही उनके मुख से एक हलकी चीख आपही आप निकल गई और उन्होंने आश्चर्य समुद्र में गोते खाते खाते बड़े आग्रह से उस वस्तु को उठा लिया जिसे आजही बिनोद के साथ उनके वहांसे जाने के पश्चात उस अपरिचित व्यक्ति ने दीवार के एक चोरदर्वाज़े से निकल कर उस पलङ्ग पर डाल दिया था ।

अस्तु, पाठकों की उत्कंठा को दूर करने के लिए हम खुले शब्दों मे यों कह देते हैं कि वह वस्तु एक बंद लिफाफे के अतिरिक्त और कुछ न था, जिसे महाराज नरेन्द्रसिंह ने बड़े आश्चर्य और आग्रह से उठा लिया और दीपक के प्रकाश में उसके आवरण पर दृष्टि डाली, जिसपर उन्हींका नाम अङ्कित था ।

तदनंतर उन्होंने उस लिफ़ाफ़े को फाड़ डाला और उसके भीतर

से एक लंबे पत्र को निकाल कर बड़ी उत्सुकता से उसे पढ़ना प्रारम्भ किया। इस बात की जांच उन्होंने उस लिफ़ाफ़े के खोलने के पूर्व ही करली थी कि उसपर किसी भी व्यक्तिविशेष की कोई मुहर न थी।

अस्तु, महाराज उस पत्र को बड़ी उत्कंठा से पढ़ने लगे, जिसकी नक़ल अपने पाठकों के चित्तविनोदार्थ हम नीचे अविकल उद्धृत कर देते हैं,—

(पत्र की नकल)

"श्रीमान्!

"आप अपने निज शयनमंदिर में, अपनेही पर्यंक पर इस पत्र को पाकर अवश्य अत्यंत चकित होंगे और सोचेंगे कि,—'इतने कड़े पहरे-चौकी पर किस व्यक्तिविशेष ने इस पत्र को यहांतक पहुंचाया है!' किन्तु श्रीमान्! आप इस बात के पता लगाने का उद्योग कदापि न करें! कारण इसका यह है कि जब तक इसका रहस्य मैं स्वयं श्रीमान पर न प्रकट करूंगा, आप कदापि इस रहस्य के उद्घाटन करने में समर्थ न होंगे कि,—'यह पत्र यहांपर किसके द्वारा और किस मार्ग से पहुंचाया गया।' बस, इस विषय में आप अभी केवल इतनीही बात से संतोष करें कि मैंने स्वयं किसी गुप्तमार्ग से आपके शयनमंदिर में उस समय प्रविष्ट होकर, जब आप अपने मंत्री के सहित यहांसे अन्यत्र पधार चुके थे, इस पत्र को आपके पर्यंक पर रख दिया था।

"अस्तु, अब मैं उस क्रम को प्रारंभ करता हूं, जिसके निमित्त मुझे श्रीमान को इस पत्र के पढ़ने का कष्ट पहुंचाना पड़ा है।

"यह बात मैं बादशाह के उस पत्र को देती बार, जो कि बादशाह ने अपने दूत द्वारा श्रीमान के समीप प्रेरण किया था, और उस दूत के मारे जाने पर, वह पत्र किसी कारणविशेष से मेरे हस्तगत हुआ था, निवेदन करचुका हूं कि,—'मैं भी नव्वाब तुगरलखां की ओर का एक मनुष्य हूं।'

"तो अब यदि कहीं यह बात प्रगट होजाय कि,—'बादशाही दूत के मारे जाने पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा वह पत्र श्रीमान की सेवा में पहुंचाया गया है; तो संभव है कि दुराचारी नव्वाब का शक मुझी पर होगा और उसका परिणाम यह होगा कि या तो मैं जान से मारा जाऊं,

अथवा किसी ऐसे स्थान मे कैद कर दिया जाऊं कि फिर आजन्म मेरा उस कैद से छुटकारा न हो और आप अपने एक ऐसे उपकारी सहायक को खो दें, जो अभी बहुत कुछ आपकी सेवा करने का विचार रखता है और जिसकी उत्तमोत्तम सेवाओं की इस समय आपको अत्यन्त आवश्यकता है।

"तो मैं आपसे क्या चाहता हूं? केवल यही कि आप बादशाह से अथवा किसीसे तबतक इस बादशाही पत्र के पाने का विवरण न कहें, जिसे आज आपने मेरे हाथों पाया है। और यदि आप या आपके मन्त्री विनोदसिंह, जो कि इस पत्र के विषय से अवगत हैं, किसी अन्य व्यक्ति पर इसके पाने का वृत्त कहेंगे तो उससे मेरी जो कुछ दशा होगी, सो तो होहीगी, किन्तु साथ ही आप और बादशाहे-देहली के भी प्राणों पर आ बनेगी और फिर मैं इस योग्य न रह जाऊंगा कि आपकी सहायता करनी तो दूर रहे; अपने ही बचाव का कोई उपाय कर सकूं।

"किन्तु हां! यदि आपको इस बात का भरोसा हो कि बादशाही पत्र के पाने का विवरण जिससे आप कहें, वह किसी दूसरे पर उस रहस्यमयी कहानी को न प्रगट करे, तो फिर आपको अधिकार है कि आप स्वयं बादशाह से अथवा अपने चाहे जिस मित्र से, जो चाहे सो कह सकते है, किन्तु, सावधान! बात फैलतेही मेरी और आपकी, तथा बादशाह की आयु पूरी ही समझिएगा।

"यद्यपि इस चितौनी देने का ध्यान या प्रयोजन मुझे उस समय नहीं जान पड़ा था, जब कि उस दूत के पास से पाए हुए पत्र को मैंने आपको दिया था; किन्तु आपसे बिदा होने पर मैंने एक ऐसा भयङ्कर समाचार पाया कि जिससे यह उचित जान पड़ा कि मैं आपको उस पत्र के प्रगट न करने की चितौनी देदूं और उस भयङ्कर समाचार की सूचना भी आपको देदूं, जिससे आप अपने और अपने मित्रों के प्राण बचालें।

"तो वह समाचार कौनसा है? वह यही है कि आपके क़िले के नीचे जो सुरङ्ग है, जिसका हाल आपको विदित है, उसमें बड़ी शीघ्रता से भयानक बारूद बिछाई जा रही है और संभव है कि यह कार्य प्रातःकाल के पूर्व समाप्त होजाय और तब उसमे आग लगाकर यह क़िला जड़मूल से विध्वंश कर डाला जाय और उसके साथही

क़िले में जितने व्यक्ति हों, सभों का एक साथही सर्वनाश होजाय।

"आह! श्रीमान् इस भयङ्कर समाचार ने आप पर बड़ा ही भयानक असर डाला होगा! किन्तु नहीं, आप न घबराय और जो मैं कहता हूं, उसे करें। वह परामर्श यह है कि आप अपने दुर्ग की खाई के उस फाटक को शीघ्र खुलवा दें, जिस रास्ते से गङ्गा का जल आकर बात की बात में सुरङ्ग में भर जाता है। यदि ऐसा आप शीघ्र कर सकें तो आप की और इस क़िले की, तथा इसमें रहनेवालों की जानें बच सकती हैं, और हत्यारों के प्राण तुरन्त जासकते हैं, जो नव्वाब तुगरल के हुक्म से सुरङ्ग में शीघ्रता से बारूद बिछा रहे हैं और जो गिनती में पचास से कम नहीं हैं।"

"श्रीमान्! उन अभागों की क़ब्र उसी सुरङ्ग में, जल में डूबकर होजायगी और आप सकुशल बच जायगे। कारण यह कि सुरङ्ग से निकलने की राह को मैं अभी किसी ढब से बंद किए देता हूं।

"यद्यपि इतने मनुष्यों के प्राण जाने का मुझे खेद है, पर क्या करूं। अब यह किसी प्रकार संभव नहीं है कि आपका क़िला और सुरङ्ग के भीतरवाले नव्वाब के आदमी,—ये दोनोंही बच जाय।

"कारण इसका यह है कि यदि वे निकलने की राह पावेंगे तो चट सुरङ्ग के बाहर निकलते ही बारूद में आग लगा देंगे, और यदि वे अभागे बाहर न निकल सकेंगे तो वे कदापि आग नहीं लगा सकते; क्योंकि इस समय, सुरङ्ग के भीतर बारूद बिछाने के समय भय के कारण अग्नि उत्पन्न करनेवाला कोई पदार्थ उन लोगों ने अपने साथ नहीं रक्खा है।

"बस, श्रीमान्! अब मैं बिदा होता हूं और पुनः आप से निवेदन करता हूं कि आप सुरङ्ग को जलपूर्ण करने का शीघ्र प्रबंध कीजिए।

आपका सच्चा हितैषी,

एक अपरिचित।"

निदान, इस पत्र को पूर्ण करते ही महाराज बड़ी घबराहट के साथ उठ बैठे और अत्यत शीघ्र,—जहांतक होसका, अत्यंत शीघ्र, वे विनोदसिंह के सोनेवाले कमरे में पहुंचे। विनोद उस समय तक जाग रहे थे। सो उन्होंने ऐसी घबराहट के साथ महाराज के एकाएक आनेका कारण पूछा, जिसे महाराज ने बहुत संक्षेप में उन्हें समझा दिया। फिर उन्हें साथ लिए हुए वे (महाराज) कई कमरे, बुर्ज,

दालान कोठरी और आगन को लाघ कर एक ऐसे मकान में पहुंचे, जिसमे बहुत से कल-पुरजे बने हुए थे। वहा पहुंच और सुरङ्गवाले चरखे के चिन्ह को दिए के उंजाले में जांचकर उन्होंने उसे घुमाना प्रारम्भ किया और जब वह घूमते घूमते घुमाव पर रुक गया तो वे दोनों उस कोठरी मे से निकल कर एक दूसरे सुसज्जित कमरे मे आबैठे और वहां महाराज ने विनोदसिंह को उस अपरिचित का वह पत्र दिखलाया।

निदान, रात भर वे दोनों मारे घबराहट के उसी कमरे मे बैठे रह गए और प्रातःकाल होने पर जब सुरङ्ग का पानी साफ किया गया तो उस अपरिचित व्यक्ति के कथनानुसार उसके भीतर से पचास लाशें निकली ! ! !

उस अपरिचित ने सचमुच उस सुरङ्ग के प्रवेशद्वार को बंद कर दिया था, जिससे वे अभागे, भाग न सके और सबके सब अपने पाप के फल को पागए।

इसके उपरान्त वह सुरङ्ग अत्यत दृढ़ता से भीतर ही भीतर कुछ दूरतक चुनकर बद करदी गई।

पाठक, अपरिचित ने यह कितना बड़ा पहसान महाराज पर किया था ! आह! जब वे उसे सोचते तो अपने चित्त में यही कहते कि,—'अब हम किस प्रकार उस अपरिचित के इस उपकार का प्रत्युपकार कर सकते हैं ?' क्योंकि जैसा उपकार अपरिचित ने किया था, उसके बदले मे यदि सारे संसार की सम्पत्ति उसे दे दीजाती, तो भी उसके उस उपकार के प्रत्यकार की बराबरी नही होसकती थी।

चौदहवां परिच्छेद.

अद्भुत व्यक्ति।

कस्त्वं महात्मन् वद किङ्करोऽहम्।

(महाभारत)

इस कथानक का क्रम हम, जोकि पूर्व परिच्छेदों में वर्णित हुआ है, यहांपर इस प्रकार वर्णन करते हैं।

बंगदेश के नव्वाब की गद्दी पर बैठकर तुगरलख़ां का घोर अत्याचार करना और लोगों का अत्यन्त उद्विग्न होकर अपने उद्धार के लिये दिल्लीश्वर गयासुद्दीन बलवन से प्रार्थना करना; भागलपुर के महाराज नरेन्द्रसिंह का बादशाह के पत्र को एक अपरिचित से पाकर उसपर अपने मित्र मन्त्री विनोदसिंह के साथ परामर्श करना, और सेनापति गोविन्दसिंह को कुछ समयोचित आज्ञा देकर वृद्धमन्त्री धीरेन्द्रसिंह के साथ परामर्श करने के लिये विनोद के साथ उनके पास जाना; महाराज के जाने पर उसी शयनमन्दिर मे एक गुप्त पथ से उस अपरिचित व्यक्ति का आना और महाराज के पर्यङ्क पर एक पत्र रखकर वहांसे चले जाना; फ़िर महाराज का वहांपर आकर उस पत्र का पाना और उसके विषय से अवगत तथा भयाकुल हो, मन्त्री के साथ परामर्श करके सुरङ्ग मे जल भर देना; उसके दूसरे दिन सुरङ्ग के साफ़ होने पर पचास यवनों के शव का निकलना और महाराज का अपने दुर्ग की सुरङ्ग को भीतर से बन्द करवा कर दुर्गरक्षा का यथोचित प्रबंध करना; फिर तीसरे दिन महाराज का अपने वयस्य मंत्री विनोद तथा एक सहस्र अश्वारोही सेना के साथ बादशाह से मिलने के लिये 'मोतीमहल' नामक गिरिदुर्ग की ओर प्रयाण करना और मृग के पीछे भटक कर रातभर वन की गिरिगुहा मे विश्राम करना; प्रातःकाल मन्त्री विनोदसिंह का जागकर महाराज को न पाना, उन्हें बहुत खोजना, अपने दुपट्टे में एक पुरजे का पाना और फिर निरुपाय होकर नगर की ओर प्रयाण करना, तथा बीच मार्ग में नव्वाब तुगरल की सेना से मुठभेड़ होने पर उस सेना से विजय प्राप्त करके राज्य की ओर

जाना और वहां पहुंचकर महाराज के अन्वेषण के लिये दूतोंको भेजना।

इधर महाराज का रातही को यवनों के हाथ पडना, जागकर अपने को बदी की अवस्था में देखना, एक अपरिचित से शस्त्रों का पाना; तदनतर उसी गृह में मुहम्मद क़ासिम से बातचीत होने पर महाराज का कई यवनों का बध करना और वहासे चल तथा आमबारी में पहुंच, उसी अपरिचित से अपने घोड़े तथा अस्त्र शस्त्र को पाना और एक ओर को प्रस्थान करना; इसके अनंतर उनका मल्लिका का अतिथी होना और फिर उससे बिदा हो, एकाकी बादशाह से मिलने के लिये 'मोतीमहल' नामक पहाड़ी की ओर जाना, तथा उनके जाने पर झाड़ी मे से निकलकर एक यवन सवार का उनका पीछा करना और उसके अनतर एक हिंदू का उसी झाडी से निकल कर एक ओर को प्रस्थान करना, इत्यादि कथा प्रारम्भ से अबतक वर्णन की गई है।

इस प्रकार अपने उपन्यास का सिलसिला ठीक करके अब हम अपने कथानक को वहांसे प्रारम्भ करते हैं, जब महाराज नरेन्द्रसिंह मल्लिका से बिदा हो, 'मोतीमहल' नामक क़िले की ओर प्रस्थित होचुके थे।

यहांपर एक बात हम और लिख कर तब अपने उपाख्यान की ओर मुड़ेंगे। वह यह है कि जब उस कोठरी में, जिसमें कि महाराज कैद किए गए थे, उन्होंने मुहम्मद क़ासिम आदि पठानों को मार डाला था; उस समय एक यवन, जिसका नाम अमीरअली था, वहां से भागा था और नव्वाब की कुछ सेना को साथ लेकर इस अभिप्राय से उसने शीघ्रता के साथ जाकर उस मुहाने को रोक लिया था, जिधर से उसने महाराज की सेना के लौटने का अनुमान किया था। उसने यही सोचा था कि,—'नरेन्द्रसिंह यहांसे निकल कर जरूर अपनी फौज में जा मिला होगा!' निदान! महाराज नरेन्द्रसिंह तो अपनी सेना मे नहीं पहुंचने पाए थे, पर मत्री विनोदसिंह का सामना यवनसेना से होगया और फिर तो हिंदूवीरों ने बड़े उमग से सारे यवनों का सहार कर डाला। वहांसे राजभवन में आकर मत्री ने महाराज के अनुसधान के लिये दूतों को प्रेरण किया था।

उधर एक आनन्द और हुआ, और वह, यह कि अमीरअली जिस नव्वाबी सेना का नायक था, उसी सेना मे उसमान नाम का एक और पदाधिकारी था, सो वह रग बदरंग देख वहांसे भागा और

दैवसंयोग से उसी झाड़ी में जा पहुंचा, जहा खुले मैदान में महाराज नरेन्द्रसिंह का घोड़ा अपनी मौज से चरता और बिचरता फिरता था। उस अश्व को देख, उसमान जैसे धूर्त्त ने इस बात का निश्चय कर लिया कि,—'जबकि नरेन्द्र का घोड़ा यहां पर है, तब उसका भी यहीं पर और इसी खडहर में ही होना मुमकिन है'। सो उसका सोचना ठीक हुआ और वह उसी झाड़ी में छिपा बैठा रहा। दूसरे दिन जब महाराज नरेन्द्रसिंह मल्लिका और सरला से बिदा हो प्रस्थान करने लगे तो उस यवन उसमान का अनुमान निश्चय से बदल गया और उसने नरेन्द्र की टोह के साथ मल्लिका और सरला का भी गुप्त निवासस्थान जान लिया। फिर उसमान ने नरेन्द्रसिंह का पीछा किया, पर जब उस अत्याचारी को मार्ग में नरेन्द्रसिंह न मिले तो उसने नव्वाब से मिल और उस (नव्वाब) के हुक्म से पचास सवारों के साथ आकर मल्लिका तथा सरला को बंदी कर लिया था, जिसका हाल हम लिख आए हैं।

अच्छा तो अब हम अपने उपाख्यान के क्रम की ओर झुकते हैं,—

महाराज नरेन्द्रसिंह खडहर से निकल और अपने अश्व पर आरूढ़ होकर 'मोतीमहल' नामक पहाड़ी दुर्ग की ओर चले। मध्याह्न का समय था, जब कि वे एक लम्बे मार्ग को समाप्त करके एक सघन बन मे पहुंचे थे और वहां पहुंच क्षण काल के निमित्त इसलिये ठहर गए थे कि जिसमे कुछ जलपान कर लिया जाय और अश्व भी चारा-पानी खा-पीकर इस योग्य हो जाय कि पहाड़ी मार्ग में सुगमता से चल सके।

अभी महाराज उस बन में, जो 'व्याघ्रवन' के नाम से प्रसिद्ध था, पहुंचेही थे कि उनके कानों में घोड़े के टापों की ध्वनि सुनाई दी। जिसे सुनतेही वे उतरते हुए भी अपने घोड़े की पीठ पर दृढ़ता से बैठ गए और उन्होंने म्यान से तल्वार खैंच ली। ठीक उसी समय उनके सामने एक सवार ने पहुंच कर अभिवादन किया।

महाराज उसे देखतेही चकित होगए और बोले,—"अद्भुत मनुष्य! तुम यहां भी आपहुंचे!"

आगन्तुक ने अपनी हसी ओठों में दबा कर कहा,—"श्रीमान् के बिना मुझे चैन कहा!"

महाराज,—"भला यह तो बतलाओ कि हम, अपने प्राणरक्षक के परिचय से अब भी कृतार्थ न होंगे?"

आगन्तुक,—"श्रीमान्! यह आप क्या कह रहे हैं! जगदीश्वर के अतिरिक्त कौन किसकी रक्षा कर सकता है!"

महाराज,—"यह सत्य है, किन्तु यदि तुम उस कालकोठरी में हमें शस्त्र प्रदान न करते तो हम उसी समय दुराचारी यवनों के आखेट होगए होते।"

आगन्तुक,—"श्रीमान्! तो क्या आप मुझ अधम के परिचय पाने से ही सतुष्ट होंगे?"

महाराज,—"केवल परिचय से ही नहीं, बरन तुम्हें एक उपयुक्त पुरस्कार प्रदान करने से।"

आगन्तुक,—"अच्छा, वह बात तो फिर होगी, पहिले यह तो बतलाइए कि आप हमें किस बात का पुरस्कार दिया चाहते हैं?"

महाराज—"इस बात के लिये कि तुमने यवनों की उस काल-कोठरी की छत के रास्ते से हमें शस्त्र प्रदान किया और ठीक ठिकाने पर हमारे निज का घोडा तथा शस्त्रास्त्र भी दिया।"

आगन्तुक,—"तो क्या, इसके पूर्व, श्रीमान्! आपने मुझे और भी कभी देखा है?"

महाराज,—(कुछ देर तक सोच कर) "हमें तो कुछ स्मरण नहीं होता कि और तुम्हें कहां और किस अवस्था में हमने देखा होगा!"

आगन्तुक,—"अच्छा, मै श्रीमान् को स्मरण कराए देता हूं। बादशाही दूत के पास जो आपके नाम का पत्र था, उसके मारे जाने पर उस पत्र को आपके पास मैनेही पहुंचाया था। हां, यह ठीक है कि उस समय मै दूसरे वेश मे था, जिससे आपका यह कहना ठीक है।"

महाराज,—(अत्यन्त आश्चर्यित हो कर) "ऐं! क्या वह व्यक्ति, वह आश्चर्यमय व्यक्ति—तुम्ही हो! और तुम्हींने किसी गुप्तमार्ग से हमारे शयनागार में पहुंच कर उस पत्र को हमारे पर्यंक पर डाल दिया था?"

आगतुक,—(अपनी प्रसन्नता की हसी रोक कर) "हां श्रीमान्!"

इतना सुनतेही महाराज ने अपने घोड़े को उस आगन्तुक के घोड़े के पास भिडा दिया और चाहा कि उस आगन्तुक को घोड़े पर चढ़े चढ़े ही गले लगा ले, कि उस (आगन्तुक) ने ऐड़ देकर अपने घाड़े को कुछ अलग कर लिया और अभिवादन करके कहा,—"श्रीमान्! दास (मै) इस योग्य नहीं है कि आप उसे इतना बहुमान दें।"

महाराज,-"प्यारे,युवक! तुमने अपना परिचय दिए बिनाही हमें बिना मूल्य ख़रीद लिया! आह! हम अब संसार में ऐसा कोई पारितोषित तुम्हारे लिये नही ठीक कर सकते कि जो तुम्हारे इतने उपकारों के शतांश का भी शतांश हो! क्योंकि हम अपना सारा राज्य या अपने प्राण देकर भी तुम्हारे उपकारों का प्रत्युपकार नही कर सकते!"

आगन्तुक,-"श्रीमान! आप अपना जी इतना छोटा क्यों करते हैं? मैं तो केवल आपकी थोड़ीसी दया का भिखारी हूं और आपकी चरणसेवा के अतिरिक्त और मेरी कोई अभिलाषा नहीं है!"

महाराज,-"वीर,युवक! तुम्हारे कार्यकलाप हमे आश्चर्यसमुद्र में डाले हुए है कि तुम कौन महापुरुष हो! और ऐसे ऐसे असाध्य साधन तुमने किस अलौकिक शक्ति के द्वारा किए? अस्तु; तो तुम हमसे क्या चाहते हो! स्पष्ट कहो! हम क्षत्रिय हैं और तल्वार को स्पर्श कर के इस बात की शपथ खाते हैं, कि जो तुम हमसे मांगोगे, बिना बिचारे हम तुम्हें देदेंगे।"

इतना सुनतेही संभव था कि वह आगन्तुक व्यक्ति मारे प्रसन्नता के मूर्च्छित होकर घोडे पर से गिर पडे, परन्तु बड़ी कठिनता से उसने अपने को सम्हाला और आत्मसंयम करके मुस्कुराते हुए कहा,-"श्रीमान्! आपने बिना सोचे बिचारे ऐसी शपथ क्यों की! अब यदि मैं कोई ऐसी वस्तु आपसे मागूं, जिसे आप देसकने पर भी न देसकें, तो क्या होगा?"

महाराज,—"प्यारे, मित्र! हम क्षत्रिय हैं और शपथपूर्वक जो कुछ प्रतिज्ञा हमने की है, प्राण रहते उससे हम टलनेवाले नहीं हैं। तुम चाहे हमारा राज्य या हमारा सिर अथवा हमारा सर्वस्वही क्यों न मागलो, पर निश्चय जानो कि जो कुछ तुम हमसे चाहोगे, यदि वह वस्तु हमारे अधिकारमे होगी तो हम बिना सोचे-बिचारे तुम्हारे हवाले करेंगे। अब कहो, दयाकर कहो,तुम हमसे क्या चाहते हो?"

आगन्तुक,—(मनही मन अत्यन्त प्रसन्न होकर) "श्रीमान्! आप दीर्घजीवी हों, आपका राज्य आपही को मुबारक रहे, मैं तो केवल एक अदनी वस्तु आपसे चाहता हूं।"

महाराज,—(आतुर होकर) "प्यारे युवक! अब शीघ्र कहो, तुम हमसे क्या चाहते हो?"

आगन्तुक,—"यदि मै आपसे मल्लिका को मागूं तो क्या आप उसे मेरे हवाले कर सकते हैं!"

इतना सुनते ही मानो नरेन्द्रसिंह के ऊपर वज्र घहरा पड़ा और उन्होंने अपने दुर्दमनीय हृदय के मथन को रोक कर बड़ी स्वच्छता से कहा,—"युवक! तुम्हारे लिये हम अपना हृदय बलि देते हैं और उसके साथही मल्लिका को भी तुम्हारे समर्पण करते है। अब यदि मल्लिका तुम्हे न स्वीकार करे, या हमें न पाने से वह आत्मघात कर डाले, तो इसमें हमारा वश नहीं है; क्योंकि जैसा हमें अपने हृदय पर अधिकार है, वैसा मल्लिका के हृदय पर नही है. तथापि हमसे जहां तक होसकेगा, हम इस बात के लिये प्राणपणसे उद्योग करेंगे कि जिसमें मल्लिका तुम्हें स्वीकार करे।"

इतना सुनते ही आगन्तुक की आंखों से आंसू बहने लगे और बड़ी कठिनता से उसने अपने उफनते हुए हृदय के वेग को रोक कर कहा,—"श्रीमान्! आप धन्य हैं और क्षत्रियकुल में आपही का जन्म लेना सार्थक है;किन्तु श्रीमान्! आप धैर्यावलम्बन करें। मैने तो केवल आपके हृदय की परीक्षा ली थी। मैं मल्लिका को आपसे पृथक करना नहीं चाहता,क्योंकि उसे मैं अपनी बडी बहिन के समान मानता हूं।"

महाराज,—(घबराकर)"अद्भुत युवक! तो तुम क्या चाहते हो?"

आगतुक,—"श्रीमान्! आप तो मुझे अभिलषित पारितोषिक प्रदान करने की शपथ खाही चुके हैं! अस्तु, अब जल्दी क्या है, जब समय आवेगा तो मैं मांग लूंगा। अस्तु, इन बातों को जाने दीजिए और हमारी एक बात का उत्तर दीजिए। क्या आप बादशाह से मिलने के लिये 'मोतीमहल' नामक दुर्ग की ओर जारहे हैं?"

महाराज,—"हा! तुम्हारा अनुमान बहुत ठीक है।"

आगतुक,—"तो अब आपके उधर जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। कारण यह कि अब बादशाह-सलामत उस दुर्ग में नहीं हैं, बरन अपने शिबर में, जो आपके दुर्ग से दस कोस उत्तर एक सुहावने बन में कल आकर संस्थापित हुआ है; क्योंकि बादशाह के मोतीमहल दुर्ग में अब न रहने का कारण यह है कि एक तो आप ठीक समय पर उनसे मिल नहीं सके थे, दूसरे जिस तरह आपके दुर्ग का विनाश करने के लिये शत्रुओं ने सुरङ्ग में बारूद बिछाई थी, उसी प्रकार मोतीमहल नामक दुर्ग में भी बारूद बिछाई गई

थी; किन्तु जिस प्रकार मैंने आपको उस रहस्य से सूचित करके सावधान किया था उसी भांति मैंने किसी प्रकार बादशाह से भी मिलकर उन्हें सावधान कर दिया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि दुराचारी पकड़े जाकर मारे गए और बादशाह-सलामत वहांसे साफ़ बचकर अपने शिविर मे चले गए; क्योंकि फिर उन्हें आपसे वहांपर मिलने की आशा नही थी, जब कि उन्होंने अपने दूत के मारे जाने का वृत्तान्त अपने चरों द्वारा सुना था।"

यह एक ऐसावृत्तान्त था कि जिसे सुन महाराज अत्यत आनन्दित और विस्मित हुए और उन्होंने कहा,—"प्यारे, मित्र! तुम अवश्य किसी बडी भारी शक्ति को रखते होगे, तब तो तुम सभी जगह ठीक अवसर पर पहुच जाया करते हो! अस्तु, तो क्या तुमने बादशाह पर यह न प्रगट किया कि,—'हमने आपके उस पत्र को, जो आपके दूत के पास था, नरेन्द्र के पास पहुंचा दिया!' क्यो?"

आगतुक,—"जी, नही। इसके बतलाने की मैंने कोई आवश्यकता नहीं समझी। और फिर मैं बादशाह के समुख तो नहीं गया था न; हा, किसी ढब से अपने पत्र को उनके हाथ तक अवश्य पहुंचा दिया था।"

महाराज,—"प्रिय युवक! तुम तो एक महामन्त्री की योग्यता रखते हो! अस्तु, अब हम क्या करें!"

आगतुक,—"श्रीमान्! यह तो आप दास को बड़ाई देते हैं, जो मुझसे इस विषय में सम्मति पूछते हैं। अस्तु, मेरी तो यही सम्मति है कि अब आप यहांसे सीधे उत्तर ओर बराबर यदि चले जाय तो दो घण्टे में बादशाही शिविर मे पहुंच सकते है।"

महाराज,—"अच्छा,हम तुम्हारी सम्मति के अनुसार ऐसा ही करेंगे।"

आगंतुक,—"तो यदि कोई क्षति न हो तो आप अश्व से अवतीर्ण हों। मेरे पास कुछ मेवे हैं, उन्हें खाकर जलपान करें; और तब तक मैं आपके घोड़े को मल दल कर इस योग्य कर दूं कि यह बहुत शीघ्र आपको अभिलषित स्थान पर पहुंचादे।"

महाराज,—(घोड़े से उतरते हुए)"यह महा अनुचित होगा—प्रियमित्र! कि तुमसे हम ऐसा काम लें।"

किन्तु इतनेही में उस आगतुकने अपने घोड़े से उतर महाराज

के घोडे की लगाम पकड ली और उसे टहलाते टहलाते कहा,—"क्या आपका मैं एक अदना सेवक नहीं हूं ?"

फिर महाराज ने उस आगतुक के दिए हुए मेवे को खा और झरने का जल पीकर विश्राम किया, इतनी देर में उस आगतुक ने महाराज के घोडे को मल दल तथा चराकर ताजा कर दिया था।

इस अवसर में भी उनदोनो की बहुतसी बातें हुईं, जिनके मिस से उसने मन्त्री का नव्वाबी सेना के परास्त करने का हाल तथा महाराज के अन्वेषण के लिये दूतों के इधर उधर दौडाने का वृत्तान्त कह सुनाया। और यह भी उसने कहा कि,—"श्रीमान् ने मल्लिका देवी के यहां पहुंचकर अपने अश्व को योंही छोड़ दिया था, यह अच्छा नहीं किया था; क्योंकि एक यवन वहा पर आपके घोड़े को देखकर आपका पता तथा आपही के साथ मल्लिका और सरला के गुप्त निवासस्थान का पता भी पा गया, यह अच्छा न हुआ।"

आगतुक की बातें सुनकर महाराज नरेन्द्रसिंह ने अपनी भूल स्वीकार की और चकपकाकर कहा,—"आश्चर्य युवक ! तुम क्या मल्लिका का परिचय जानते हो ?"

आगंतुक,—"जी हां, मैं उनका सारा परिचय जानता हूं।"

महाराज,—"वह किसकी कन्या है ?"

आगंतुक,—"क्षमा करिए, श्रीमान् ! मल्लिका का परिचय मैं आपको नहीं देसकता। सभव है कि वह स्वयं या उसकी सखी सरला आपको उपयुक्त समय पाकर सारा परिचय देगी।"

महाराज,—"तुम आश्चर्य व्यक्ति हो ! ! !"

आगतुक,—(मुस्कुराकर) "जी हा, श्रीमान् !"

इसके अनन्तर एक घंटे विश्राम करके महाराज बादशाह के शिविर की ओर चले और वह विचित्र युवक अपने अभिलषित लक्ष्य की ओर चला गया। पाठक, यह वही युवक है जो उस झाड़ी में से उसमान के निकलने के बाद निकल कर महाराज के पीछे लगा था। किन्तु बडे आश्चर्य का विषय है कि उस यवन ने तो महाराज नरेन्द्रसिंह को न पाया, किन्तु इस अद्भुत युवकने अवश्य उन्हें पा लिया।

पन्द्रहवां परिच्छेद.

स्थिरमंतव्य ।

" यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी । "

(अग्निपुराण)

आज प्रातःकाल सुविस्तृत वङ्गभूमि के एक प्रान्त में अपूर्व दृश्य दीख पडता है !! नवगांव से कोई चार कोस पश्चिम सेनासागर शिविर सन्निवेशित करके पड़ा है। कहीं हाथी, कहीं घोडे, कही ऊट, कही खच्चर, कहीं भारवाही वृषभों के झुण्ड के झुण्ड खूंटों मे बधे परस्पर कल्लोल कर रहे हैं। निज निज व्यापार मे सैनिकगण आतुरता से लगे हैं। कहीं रसिकगण परस्पर हासविलास कर रहे हैं। कोई अश्वों को फेरते और कोई परस्पर कृत्रिम युद्ध करते हैं। सेनानिवेश के भीतर सैकड़ों पटमंदिर (तंबू) खड़े हैं, उनके मध्य मे एक अत्युच्च प्रकांड डेरा रेशम और कलाबत्तू तथा ज़रदोज़ी काम की उत्तमता से चमचमाता हुआ, सूर्य के कर से अपना कर मिला रहा है। सेना में कोलाहल से कान पड़ी नहीं सुनाई देती है।

प्रहर दिन चढ़ा होगा, इसी अवसर में एक अश्वारोही वेगपूर्वक अश्वचालन करते करते चला आता था। उसने अनिवार्य गति से शिविर में प्रवेश किया। उसे देखकर उसके अमानुषिक तेजःपुञ्ज और वीरवेश से सब चमत्कृत होकर जहांके तहां चित्रलिखे से खड़े रह गए। किसीकी भी सामर्थ्य नहीं हुई कि उसके सन्मुख जाकर उसके आगमन का वृत्तान्त पूछै, वा उसकी अनिवार्य गति का रोधकरै।

युवा निःशङ्कचित्त से सर्वोत्तम पटमन्दिर के द्वारपर उपनीत होकर खड़ा हुआ। वहा सहस्रशः शमनसदृश प्रहरीगण शस्त्र लिये द्वाररक्षा में नियुक्त थे। युवा को देखकर सभी ससंभ्रम खड़े होगए।

युवा ने एक यवन प्रहरी से प्रश्न किया,—"बादशाह-सलामत नित्यकृत्य से निश्चित होचुके हैं ?"

प्रहरी,—"जी, ठीक नही कहसकता, मगर दर्बार का वक्त करीब है।"

अश्वारोही,—"दिल्लीश्वर की सेवा में कुछ निवेदन करसकतेहो।"

प्रहरी,—"आप कहांसे आए हैं? आपका नाम क्या है? और काम क्या है?"

अश्वारोही,—"अच्छा, तुम इतनेही में समझ लोगे! सूचना दो कि "भागलपुर का राजा उपस्थित है।"

द्वारपालगण महाराज का परिचय पाकर खड़े होगए और सभोंने अभिवादन किया। महाराज ने एक से पुनः सूचना देने का अनुरोध किया। द्वारपाल आज्ञा शिरोधार्य करके भीतर गया। अनंतर जो महाराज के समीप प्रहरीगण खड़े थे, परस्पर धीरे धीरे सभोंने उनके परिचय पर तर्क-बितर्क करना आरम्भ किया।

एक ने कहा,—"ये क्या तुगरलखां के दूत बनकर आए हैं?"

दूसरा,—"नहीं जी! कोई सिपहसालार होंगे। देखो, पोशाक वैसी ही है।"

तीसरा,—"नहीं नही! बङ्गाले के कोई राजा होंगे।"

चौथा,—"वाह! राजा भी कहीं यों अकेला आता है? कोई ज़िमीदार होगा।"

एक,—"ठीक तो कहा। ख़ैर, अभी सब मुफ़स्सिल हाल मालूम होजायगा।"

प्रहरीगण महाराज का परिचय निर्णय न करके क्षुण्णमनसे खड़े रह गए, इतनेही में द्वारपाल के सङ्ग बीस पचीस व्यक्ति उत्तमोत्तम परिच्छद परिधान किए, बाहर आए। उनलोगों के मध्य में एक बहुमूल्य वस्त्राभरण से अलकृत सम्भ्रान्त युवक चले आते थे। उन लोगों को आते देखकर महाराज अश्व से अवतीर्ण हुए और अपनी उत्कर्षता दिखाने के लिये अनेक व्यक्तियों ने महाराज के अश्व को थाम लिया।

आगतुक लोगों मे से एक व्यक्ति ने महाराज को अभिवादन करके कहा,—"महाराज! ये शाहनशाह-दिल्ली के शाहजादे हैं। इनका नाम शाहजादे मुहम्मद है।"

श्रवणमात्र ही से महाराज और शाहजादे महामोद के सङ्ग गले गले मिले और यथायोग्य प्रेम-संभाषण करना आरम्भ किया।

महाराज,—"आपके दर्शन की बड़ी अभिलाषा थी, सौभाग्यों से आज वह प्राप्त हुआ।"

शाहज़ादा,—"जी नहीं, मैं किस लायक हूं! मगर हां, आपकी मुलाकात से मेरा दिल निहायत शाद हुआ, यह कहना लाज़िम है।"

महाराज,—"अस्तु, दिल्लीश्वर अतिशय प्रसन्न हैं ?"

शाहज़ादा,—"खुदा का फ़ज़ल है । चलिए वे आपकी मुलाकात के इश्तियाक में बैठे हैं ।"

अनतर शाहज़ादे ने महाराज का हाथ थाम कर अनुचरवर्गों के सहित पटमन्दिर के भीतर गमन किया. अश्व की रक्षा का भार द्वारपालों के सिर पड़ा ।

महाराज को देखकर बादशाह अतीव हर्ष के सङ्ग सिंहासन से उठे और महाराज का सादर पाणिग्रहण करके कंठाश्लेष किया। दोनों महानुभावों मे परस्पर यथोचित अभिवादन हुआ । बादशाह महाराज को निज सिंहासन पर अपनी दाहिनी ओर बैठाया चाहते थे । पर महाराज ने अस्वीकार कर दिल्लीश्वर के बाम भाग में दूसरी रत्नमयी चौकी पर आसन ग्रहण किया, और प्रथम बादशाह को बैठाकर अनंतर वे स्वयं बैठे । बादशाह के इङ्गित से सब अनुयायिवर्ग यथोचित स्थान पर बैठे, शाहज़ादे बादशाह के दहिने एक चौकी पर सुशोभित हुए । परस्पर अनत वार्त्तास्रोत प्रेमवेग से बहने लगा ।

बादशाह ने सस्मित कहा,—"आपका मिज़ाज शरीफ़! सलतनत में अमन व रियाया खुश व खुर्रम है ?"

महाराज,—"जब आपके श्रीचरणों ने बङ्गभूमि को अलङ्कृत किया है, तब मंगल होने मे त्रुटि क्या है ? अन्यथा तुगरलखां जैसे नव्वाबों से—महोदय !—आनन्द और शान्ति कब हो सकती है ? अस्तु श्रीमान् का सर्वाङ्गीण मंगल ।"

बादशाह,—"खुदा के करम से ज़िंदः हूं, और अब सफ़र से तबीयत भी कुछ फ़र्हत-याफ़्तः है । हां यदुनाथसिंह मज़े मे हैं ! वे आपके साथ नहीं आए ?"

यदुनाथसिंह का नाम सुनते ही महाराज का मुख विषण्ण होगया, और उन्होंने दीर्घनिश्वास लेकर भग्नस्वर से कहा,—"श्रीमान् ! कहते हृदय विदीर्ण होता है, आज दो वर्ष गत हुए, इन्हीं दुष्ट पठानों ने, या यों सही कि तुगरलखां के षड्यन्त्र ने उनका सर्वनाश किया । हा ! उस सज्जन व्यक्ति को विनाश करके उनकी सती स्त्री और अनूढ़ा कन्या को न जाने कहां, किस दशा में उन दुष्टों ने रक्खा है, इसका कुछ भी अनुसंधान नहीं मिलता । मैंने

प्रकृत अपराधी का विशेष अनुसंधान किया, किन्तु कुछ पता न लगने से व्यर्थ किसीको दंडित करना भी अनुचित समझा। इसीमे दो बर्ष बीत गए, किन्तु कुछ भी फलसिद्धि नहीं हुई।"

बादशाह,—"आजकल उनकी जगह पर कौन है?"

महाराज,—"जी! उपमंत्री रघुनाथसिंह उस पदपर स्थित किए गए हैं।"

बादशाह,—"आह! निहायत रंजीदः कलमा आपने सुनाया! महाराज! खुदा जानता है कि मैंने इस बात से बहुत ही सदमा पाया। ख़ैर! मर्ज़ी अल्लाहताला की; पर अब इन बदमाश फ़सादियों को जल्द सर करना चाहिए, वर न ये बिल्कुल सल्तनत को बर्बाद वो नेस्तोनाबूद करदेंगे।"

महाराज,—"अवश्य, किंतु तुगरलखां के पास सेना बहुत है, इसलिये जबतक पटने से श्रीमान् की शेष सेना भी न आजाय, तबतक सन्मुख न लड़कर कूटयुद्ध करना चाहिए।"

बादशाह,—"मैं भी यही ख़याल करता था। ख़ैर, इस काम में अञ्जाम देने के लिये कितनी फ़ौज काफ़ी होगी?"

महाराज,—"केवल पांच सहस्र!!! उतनी मैं स्वय संग्रह कर चुका हूं, वेही काम देंगी; किन्तु आपसे विशेष सहायता समय समय पर ली जाया करेगी।"

बादशाह,—"नही,नही,आप जितनी फ़ौज चाहें, लेसकते है।"

महाराज,—"श्रीमान के समीप क्या नही है,। सभी ईश्वर ने प्रदान किया है; किन्तु यदि मैं आपका पर नहीं हूं तो मेरी जो कुछ वस्तु है, सब आपकी है, और आवश्यकता होने पर वह लीजाय।"

बादशाह,—"दुरुस्त है, ऐसाही होगा; मगर बिल्फ़ेल मेरी फ़ौज भी आपके हमराह रहै; पस, जिस सूरत से चाहें, उससे काम का अंज़ाम दें, मगर आप ज़ियादह ख़तरा न उठाएं।"

महाराज,—"आपकी कृपा के प्रताप से मङ्गल ही होगा, आप कोई शङ्का न करें।"

बादशाह,—"इस वक्त आपके हमराह कितनी फ़ौजें आई हैं?"

महाराज,—"इस समय मैं एकाकी ही उपस्थित हुआ हूं।"

यह सुन कर बादशाह आश्चर्यान्वित, और इतर सभासद स्तब्ध होकर निर्निमेष लोचनों से महाराज के मुख की ओर देखने लगे।

तब महाराज ने हंसकर कहा,-"इसमें आश्चर्य की क्या बात है?"

बादशाह,-"सरासर ताज्जुब का मकाम है !!! ऐसे खौफ़नाक वक्त में अकेले इस तरह घूमना आपही का काम है !"

महाराज,—"अवश्य ही मैं मृत्यु के मुखमे पड चुका था, किन्तु ईश्वर ही ने रक्षा करके आपके समीप तक पहुंचाया।"

बादशाह,—"एँ ! क्या फर्माया आपने ? क्या हुआ था ?"

इस पर महाराज ने, शाही दूत के मारे जाने, पुनः एक अपरिचित से उस (शाही) पत्रके पाने, अपनी सुरङ्ग में बारूद बिछाई जाने का समाचार जानने, तदनन्तर मन्त्री विनोदसिंह के साथ बादशाह से मिलने के लिये प्रस्थान कर बन मे मृग का पीछा करने, फिर बन के मध्य मे रात्रि के समय शयनावस्था मे यवनों के हाथ पड़ने; फिर यवनों का निज प्रस्ताव प्रकाश करने, और उनका बध करके अपना मार्ग लेने, इत्यादि का सविस्तर वृत्तान्त कह सुनाया, पर मल्लिका के अतिथि होने का हाल छिपा रक्खा। यह सब सुन कर बादशाह की आंखें क्रोध से लाल होगईं, उनकी भुजा फड़कने और अङ्ग प्रत्यङ्ग कांपने लगे।

उन्होंने गर्ज कर सभासदों की ओर मुख फेर कर कहा,-"बस, जहांतक होसके, अब जल्दी ही शैतान तुगरल का सर काटलो, क्योंकि उस बदकार का अब ज़ियादह दिन दुनियां में रहना बिहतर नहीं है। उसके ख़ान्दान में कोई भी जीता बचने न पावे और न वह भाग कर निकल जासके।"

यह सुन सभी सभासद नीरव थे, किसीके मुख से भी कोई शब्द नहीं निकलता था। यह देख, सहसा महाराज ने कहा,-"दिल्लीपति! उस दुष्ट के बध का भार मैंने अपने ऊपर उठाया। ईश्वर की कृपा और आपकी सहायता हुई तो वह शीघ्र ही अपने पापों का फल पाएगा।"

महाराज की बातें सुन सभी महा आनन्दित होकर उनके साहस को आंतरिक धन्यवाद देने लगे।

बादशाह ने शांतिलाभ कर के कहा,—"वाक़ई आप क्षत्रियवीर और हिंदुओं के सरताज हैं, वर न कौन ऐसी हिम्मत दिखलाएगा? अलाहाजुल्कयास, आपकी बात दिलो जान से कुबूल हुई, अब उस दोज़खी कुत्ते को जिस तरह आप चाहें, फ़ौरन कतल कर डालें।"

महाराज,—"श्रीमान् के लिये मैं दिलोजान से तैयार हूं।"

बादशाह,—"और भी आप जो कुछ हमसे चाहे, बेरुकावट कहे।"

महाराज,—"यह आपके देवस्वभाव का परिचय है। अस्तु, उस दुष्ट का सिर मैं खुद काट कर मंत्री के ऋण से मुक्त होऊंगा, और उस दुष्ट के मारे जाने के अनंतर बङ्गाल के जिन जिन भूम्यधिकारियों की स्थावर वा अस्थावर संपत्तिया हर ली गई हैं, वे क्षतिपूरण के सङ्ग उन्हें लौटा दी जाय।"

बादशाह,—"जरूर! ज़रूर! इसमें क्या कहना है! यह तो मसलहत की बात है।"

महाराज,—"एक बात और भी है।"

बादशाह,—"वह क्या!"

महाराज,—"वह कुछ विशेष नही है, केवल यही कि तुगरल ने मेरे समीप दूत के हाथ बड़ा अश्लील पत्र भेजा था।"

बादशाह,—"उस ख़त मे उस नालायक ने क्या लिखा था?"

इसपर महाराज ने,—"सुनिए;"—यों कह कर उसके पत्र का सब आशय सुना दिया, जिसे सुनकर बादशाह तुगरल पर बहुत ही कुपित हुए और बोले,—

"इससे दो बातें साबित हुईं; एक तो यह कि उसीने मंत्री को मरवा डाला होगा! और दूसरी यह कि अभी तक उनके घर की औरतें उसके हाथ नही लगी होंगी! ख़ैर! देखा जायगा, उसकी मौत अब उसके नज़दीक ही आ पहुंची है।"

इसके अनंतर बादशाह ने मातीमहलदुर्ग के बारूद से उड़ा देने के रहस्य को कहा और फिर यों कहा,—"जब मैंने अपने अहलकार के मारे जाने का हाल सुना तो यह जान कर कि 'अब मेरे ख़त के न पाने से आप मेरे पास न आसकेंगे,' मैं यहां अपने ख़ेमे मे चला आया। मगर महाराजासाहब! वह अजनबी कौन है, जिसने आपके और मेरे किले को इस खूबी के साथ बचाया! खुदा जानता है, मैं उसके एहसानों के बोझ से सर नही उठा सकता।"

महाराज,—"श्रीमान्! मैंने बहुत चाहा कि उस विचित्र युवक का कुछ परिचय पासकूं, परन्तु वह अपने विषय मे अभी कुछ भी नही कहता।"

बादशाह,—"ख़ैर, तो अगर वह मेरे पास भी आया तो मैं उसे मुंह मांगा इनाम दूंगा।"

महाराज,— 'इस बात की तो उससे मैं भी प्रतिज्ञा कर चुका हूं।"

बादशाह,—"सच है, वह इसी काबिल है।"

महाराज,—"तो अब आज्ञा हो तो मैं प्रस्थान करूं।"

इस पर बादशाह के अनुरोध करने पर भी कार्य्यसाधन के लिये महाराज वहां न ठहर सके और कुछ फौज संग लेकर बिदा हुए। बादशाह ने अतर-लायची देकर उन्हें सादर बिदा किया, पर महाराज ने उसी समय शाही फ़ौज को एक ओर भेज कर स्वयं एकाकी अपने दुर्ग ओर गमन किया।

बादशाही शिविर से निकल कर महाराज नरेन्द्रसिंह दोही कोस दूर गए होंगे कि उनके कानों में घोड़े के टापों की ध्वनि सुनाई दी, जिसे सुन यह जानने के लिये वे वहीं पर, जोकि एक घने जङ्गल का मुहाना था, ठहर गए। थोड़ी ही देर में उनके सामने घोड़ा कुदाता हुआ वही अज्ञातनाम अपरिचित आ पहुंचा, जिसे देख महाराज चकित होने के साथ ही अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले;—"वाह, वाह, मित्र! अपरिचित मित्र! तुम तो हमारे साथ साथ मानों छाया की तरह फिर रहे हो!"

अपरिचित—(अपनी हंसी ओठों में दबा कर) "इसलिये कि श्रीमान मेरी काया जो ठहरे!!! अस्तु, आपका बादशाह से मिलने जाना नव्वाब के चरों को विदित होगया है और यह भी वे जान गए हैं कि आप बादशाही सेना को अपने साथ न लेकर अकेले इसी मार्ग से आवेंगे। अतएव आप उलटे फिरिए और शाही सेना से मिल और उसे साथ लेकर तब अपने दुर्ग की ओर जाइए; क्योंकि आगे बैरियों का गोल है।"

यों कह कर वह अपरिचित वहांसे हवा होगया और महाराज भी इधर से लौट पड़े।

सोलहवां परिच्छेद.

अपूर्व मिलन ।

"भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्"
(नीतिविवेक)

रजनी घोर कृष्णवर्ण परिच्छद परिधान किए संसार में कृष्णाभिसारिका की भांति नृत्य करती थी। बन में रात्रि के समागम से क्रमशः निस्तब्धता का विराट रूप बढ़ताही जाता था। कभी कभी निशाचर पशुपक्षियों के कर्कश शब्द से शांति भङ्ग होती थी, पर वह दृश्य क्षण भर मे अदृश्य होजाता था। उस समय घोर बन में एक अर्द्धमृत बालिका को वेष्टन करके पांच चार व्यक्ति बैठे क्रमशः उस बालिका को अश्लील शब्दों से मृयमाण कर रहे थे।

एक ने कहा,—"दिलरुबा! अब भी क्या तुम हमारे हाथ से निकल भागोगी? बहुत दिनों में हमलोगों ने तुम्हें अपने दाम में फंसाया है। दिलरुबा! अब दिल खोलकर हंसो, बोलो और खुशियां मनाओ!"

यह सुन बालिका ने रोदन करते करते ऊर्ध्व मुख करके करुणापूर्वक कहा,—"दयामय! परमपिता! पितृमातृविहीना अनाथ बालिका की दस्यु के हाथ से ऐसी दुर्दशा होरही है, और तुम्हें विदित नहीं है! देव! तुम क्या शयन करते हो! हा! तुम्हें छोड़ कर कौन इस बिपद से मेरा उद्धार करैगा? नाथ! मुझे इतना भी अवसर नहीं मिलता कि किसी प्रकार आत्मघात करके ही अपने सतीत्व की रक्षा करूं।"

यों कहते कहते वह रोदन करने लगी और एक दुर्वृत्त ने उसका चरण स्पर्श करके कहा,—"नाज़नी! क्यों नखरे करती हो! तुम बादशाह की बेगम बनाई जाओगी।"

बालिका,—"तुम मेरे पिता के तुल्य हो, मुझ अभागिनी को छोड़ दो। मैं तुम्हारी कन्या हूं।"

दस्यु,—"तुम मेरी बीबी हो! घबराती क्यों हो? नव्वाबसाहब, जो आजकल बङ्गाल के बादशाह हैं, तुम्हारे बगैर दीवाने होरहे

हैं, तुम्हे वे अपनी बेगम बनावेंगे।"

बालिका,—'छि! सत्यानाशी! तेरी रसनाव्याली तुझे डसती क्यों नही? मैं तुमलोगों पर थूकूंगी भी नहीं; दूर हो सामने से! दुराचारी, पापिष्ठ!"

यों कह कर रोषान्वित बालिका ने उसका हाथ झटक कर अपना पैर छुड़ा लिया और कातर होकर रोदन करने लगी।

पाठकों ने इन दुष्टों की दुरभिसंधि को समझा होगा। ये सत्यानाशी पठान कहीं से एक अनाथ बालिका को घर लाए थे, और निज पशुवृत्ति चरितार्थ करने के लिये निर्जन बन में उसे मर्माहत कर रहे थे। बालिका की रक्षा का कोई उपाय नहीं था, और न उसका ईश्वरभिन्न वहां पर उस समय दूसरा कोई सहायक ही था।"

"तो तुम सीधी तरह से न मानोगी?" यों कहकर उस नरराक्षस यवन ने बलपूर्वक उस बालिका को आलिंगन करने के लिये उसे भूमिपर पटक दिया। फिर वह निज पिशाचोचित पशुवृत्ति चरितार्थ करने का बिचार कर रहा था कि एकाएक उसी अवसर मे किसीने दूर से लक्ष्य करके ऐसी गोली मारी कि वह व्यक्ति, जो बालिका के सतीत्व नष्ट करने के लिये उद्यत हुआ था, धाराशायी हुआ। यह उत्पात देखकर शेष पठान लोग आश्चर्यान्वित हो, इधर उधर देखने लगे। इतने ही में दो गोलियों के लगने से दो व्यक्ति और मृत हुए, और तब शेष दो व्यक्ति भयसंत्रस्त होकर पलायन करने के लिये उद्यत हुए थे कि कोई अश्वारूढ़ ने सत्वर वहां पहुंचकर क्षणभर में उन दोनों का भी संहार किया। बालिका उस समय मूच्छितप्राय होरही थी, किंतु अपने शत्रुओं को मरते देखकर वह कुछ प्रकृतिस्थ हुई।

अश्वारूढ़ एक युवा व्यक्ति था। उसने अश्व से उतर बालिका के समीप जाकर कहा,—"शुभे! अब कोई भय नहीं है, आप शांत होइए।"

युवा को देखते ही बालिका के हृदय में एक अनिर्वचनीय भाव का सञ्चार हुआ। वह लज्जा से संकुचित हुई और सहसा कुछभी नहीं बोल सकी।

यह देखकर युवा ने पुनः कहा,—"आप कहां जायगी? कहिए तो हम आपको वहीं पहुंचा दें।"

बालिका,—"आप हमारे रक्षक हैं और आपके भिन्न अब कोई

मेरा इस संसार में नहीं है; तब मैं अनाथिनी कहां जाने के लिये बतलाऊं ?"

यह सुन युवा का हृदय भरआया। उसके मन का भाव बदल गया और उसने करुणा से कहा,—"क्या आपके कुटुंब में कोई नहीं है ?"

बालिका,—"एक प्रकार नहीं ही कहना चाहिए। दुष्ट नव्वाब के भय से मैं एक वृद्धा के साथ रहती थी, वह वृद्धा मुझे निज कन्या के तुल्य चाहती थी। सो नरराक्षसों ने आज दो पहर के समय उसका बध किया और इस बन में मुझ निराश्रया को लाकर मेरा सतीत्व नष्ट किया चाहते थे कि आपने एकाएक आकर इस विपद् से मेरा उद्धार किया।"

युवक,—"आप क्षत्रियकन्या जान पड़ती हैं।"

बालिका,—"हां ! आपका अनुमान ठीक है।"

यों कहकर बालिका ने लज्जा से सिर झुका लिया।

युवा,—"तो चलिए, यहां ठहरना योग्य नहीं है। समीपही सेना की छावनी है, आप निरापद वहां पहुंच जायंगी।"

बाला,—"एक अनुरोध से मैं आपके साथ चल सकूंगी।"

युवा,—"वह क्या ?"

बाला,—"मुझे भूल तो न जाइएगा ?"

युवा,—"जीवन रहते कभी नहीं भूलूंगा, चाहे आप भूल जायं।"

बाला,—"आप देवता हैं ! चलिए, मै आपके साथ चलती हूं।"

युवक,—"आपका नाम क्या है, सुन्दरी !"

बालिका,—"आप कृपाकर के थोड़ी देर के लिये मुझे क्षमा करें। तनिक मेरा जी ठिकाने होजाय तो फिर मैं अपनी सारी व्यवस्था आपसे कहूंगी; किन्तु इतना मेरा निवेदन है कि आप मुझे "आप" कह कर न संबोधन करें और यदि अनुचित न हो तो कृपाकर अपना परिचय भी दें।"

युवक,—"सुन्दरी ! क्या तुम हमारे परिचय पाने से संतुष्ट होगी ? अस्तु, अब तुम भी हमें, "आप" न कहो।"

बालिका ने, जिसकी अवस्था चौदह वर्ष की थी, मुस्कुराकर कहा,—"क्यों नहीं होऊंगी ? अपने उद्धार करनेवाले और धर्म बचानेवाले का यथार्थ परिचय पाकर मैं अवश्य आनन्दित होऊंगी;

और आपकी आज्ञा से अब से आपको 'आप' कहकर सबोधन न करूगी।"

युवक,—"तुम तो अभीतक कुमारी हो न!"

बालिका,—(सलज्ज भाव से) "जी, हां!"

युवक,—"और इसके लिये भी तुम स्वतंत्र हो कि चाहे जिसे तुम अपने को देडालो! जैसा कि तुमने अभी कहा है कि,—'मुझे और कोई नही है'?"

यह सुनकर बालिका लज्जा से कुछ देर लो चुप रही, फिर युवा के बार बार प्रष्ण करने पर बोली,—"यह सत्य है. कि मेरा अपना कोई नहीं है, किन्तु इससे आपको क्या? आपका अभिप्राय क्या है?"

युवक,—"हमारी इच्छा यही है कि यदि तुम दया करके हमारे हृदय की अधिष्ठात्री देवी बनो तो हम अपने को कृतार्थ समझें।"

बालिका,—(सलज्ज भाव से) "क्या यह बात आप सच कहते हैं?"

युवक,—(तल्वार की मूठ पर हाथ डालकर) "हम क्षत्रिय हैं, अतएव तल्वार छूकर शपथ खाते हैं कि हमने अभीतक विवाह नहीं किया है और तुम्हारे ऐसी सुशीला भार्या पाकर सचमुच हम अपने को भाग्यवान और कृतार्थ समझेंगे।"

इतना सुनकर उस बालिका ने अपने को उस वीर युवक के चरणों पर डाल दिया और रोकर कहा,—"आजसे मैं आपके चरणों की दासी हुई।"

इतना सुनकर उस युवक ने उठाकर उस बालिका को अपने हृदय से लगा लिया और उसके कपोलों का चुंबन करके कहा,—"प्रिये! तुम आजसे हमारे हृदय की अधिष्ठात्री देवी हुई।"

इतना कहकर उस युवक ने जब अपना यथार्थ परिचय उस बालिका को दिया तो वह अत्यंत प्रसन्न हुई और उसके अनंतर उसने भी संक्षेप में अपना सारा परिचय उस युवा को दिया, जिससे उस के आनन्द की सीमा न रही और उस युवक तथा उस बालिका-दोनों ने इस बात को जान लिया कि 'यह पारस्परिक संयोग विधाता की अनन्त दया के कारण ही हुआ है!'

युवक,—"अच्छा, अब प्यारी! तुम हमारे साथ शीघ्र यहांसे चली चलो, क्योंकि यह स्थान भयङ्कर है और संभव है कि कदाचित

यहां पर वैरियों का कोई दल आकर हम लोगों पर आक्रमण करे ।"

बालिका,-"चलो, प्यारे! मैं तुम्हारे साथ चलने के लिये तैयार हूं।"

युवक,—"तो, तुम इस घोड़े पर चढ़ो ! "

बालिका,—(लज्जा से) "एं ? घोड़े पर ! ! ! "

युवक,—(मुस्कुरा कर) " हानि क्या है ! हम भी तुम्हारे साथ रहेंगे । "

बालिका,—"तुम पैदल चलोगे ? "

युवक,- 'यदि आज्ञा दोगी तो तुम्हारे पीछे हम भी बैठ जायंगे ।"

यह सुन कर बालिका ने लज्जित होकर अपना सिर झुका लिया । इतने ही में एक सवार तेजी के साथ घोड़ा दौड़ाता हुआ वहां आपहुंचा और इतना कह कर तुरंत एक ओर को चला गया कि,- 'यहां से सामने की ओर जलदी भागो, बैरी पीछे से आरहे हैं।"

इतना सुनते ही चट पट उस युवक ने उस बालिका को घोड़े पर चढ़ाया और उसके पीछे आपभी चढ़ बैठा । उस समय बालिका ने कहा,—"यह कौन व्यक्ति था, जिसने ऐसे समय में आकर इतना उपकार किया ? "

युवक —"इस विचित्र युवक का परिचय हम कुछ भी नहीं जानते, किन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि इस अद्भुत व्यक्ति ने समय समय पर हमारे महाराज का बड़ा उपकार किया है और आज भी इसी महात्मा युवक ने तुम पर अत्याचार होने का वृत्तान्त हमें सुना कर तुम्हारे उद्धार के लिये इस ओर हमको भेजा था और स्वयं भी दूर से अत्याचारियों पर गोली चलाई थी ! "

निदान, इसी प्रकार वह युवक अपनी नई प्रेमपात्री को लिए हुए निर्विघ्न महाराज नरेन्द्रसिंह के बतलाए हुए नियत स्थान पर पहुंच गया ।

पाठक, यह युवक मंत्री विनोदसिंह के अतिरिक्त कोई नहीं है, पर वह बालिका कौन है ? इसका परिचय हम फिर किसी समय प्रदान करेंगे ।

सत्रहवां परिच्छेद.

रक्षा।

" स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे। "

(नीतिमाला)

आधीरात का समय होगा, जब सैकड़ों सैनिकों के मध्य मे एक पालकी प्रशस्त राजपथ से चली जाती थी। सैनिक सभी पैदल थे और नङ्गी तलवार तथा अनेक शस्त्रों से सुसज्जित थे। सब चुपचाप दबे पैर चले जाते थे। योंहीं कई कोस अतिक्रम करके उनलोगों ने एक निविड़ बन के दुर्गम मार्ग से चलना प्रारम्भ किया। यह बन यद्यपि सघन था, किन्तु भयङ्कर जन्तुपूर्ण नहीं था। आम्र के वृक्षों की अधिकता से इसे लोग 'आम्रकानन' कहते थे। यद्यपि ज्योत्स्नामयी रजनी थी, तथापि श्रेणीवद्ध वृक्षों के कारण बन मे ज्योत्स्ना का प्रवेश नहीं होने पाता था। थोड़ी दूर जाने पर अबला के कण्ठ से निकली आर्त्तध्वनि श्रवणगोचर हुई। यह सुनते ही एकाएक पालकी में से मुख निकाल कर एक युवक ने पालकी खड़ी कराई। आज्ञा पातेही पालकी वहीं ठहरी और तब सब सैनिक वहीं ठहर गए।

युवा ने शिविका से मुख निकाल सैनिकों को एकत्र करके कहा,—"भाई! कुछ सुनते हो? यह किसके रोने की ध्वनि सुनाई देती है?"

उनमें से एक सैनिक ने कहा,—"महाराज! स्त्रीकंठ का आर्त्तनाद जान पड़ता है। देखिए! वहां पर कुछ हलका प्रकाश भी चमक रहा है, जो बहुत दूर नहीं होगा।"

युवक,—"खड्गसिंह! किसी दुर्वृत्त दस्यु के हाथ मे पड़ कर निःसहाया अबला अतिशय मर्मयातना भोग रही होगी; अतएव अब बिना उसका उद्धार किए, आगे जाना, मनुष्यता और क्षत्रियत्व से दूर है।"

खड्गसिंह ने महाराज को रोक कर विनयपूर्वक कहा,—"यथेष्ट हुआ, प्रभो! अब आज्ञा दीजिए तो अभी उस दुष्ट को

उचित दण्ड दूं, और अबला की सहायता करके लौट आऊं !"

महाराज ने शीघ्रता से कहा,—" किन्तु ठहरो, कदाचित यह स्थान वही है, जहां पर हमको ठहरने के लिये हमारे एक अपरिचित सहायक ने हमें सकेत किया है।"

यों कहकर महाराज नरेन्द्रसिंह पालकी में से उतर पडे। उनके उतरते ही एक अत्युच्च वृक्ष पर से एक व्यक्ति कूद पड़ा, जिसे देखते ही महाराज कुछ घबराए; पर उसने तुरन्त अपना प्रकृत परिचय देकर उनके उद्वेग को दूर कर दिया और कहा,—"श्रीमान् समय पर और ठीक स्थान पर पहुंच गए हैं।"

पाठक! भागलपुर के महाराज नरेन्द्रसिंह को तो पहचान ही गए होंगे, किन्तु इस व्यक्ति से अभी तक अनजान होंगे, जो अभी एक वृक्ष पर से उनके सामने कूदा था। इसके विषय मे अभी हम केवल इतना ही कहना यथेष्ट समझते हैं कि यह वही अपरिचित व्यक्ति था, जो अबतक लगातार कई बार हमारे नायक महाराज नरेन्द्रसिंह की सहायता कर चुका था।

उस अपरिचित ने कहा,—" श्रीमान्! मैं अभी यह कह चुका हूं कि आप मेरे सकेतानुसार ठीक समय और ठीक स्थान पर पहुंच गए हैं।"

इतने ही में उस सन्नाटे को बेध करती हुई फिर किसी अबला के रोदन की करुणध्वनि सुनाई दी; जिस पर महाराज का ध्यान आकर्षित करके उसी अपरिचित ने कहा,—"श्रीमान्! आप सुनते हैं! यहांसे उत्तर ओर थोड़ी दूर पर नव्वाब के दासों सैनिकों के मध्य मे आपकी मल्लिका अवरुद्ध है। बस जाइए और उसका उद्धार करिए; किन्तु सावधान! यह अवसर वीरता दिखलाने का है; और क्षमा कीजिएगा,-मैं इस समय आपके साथ नहीं रहसकता।"

यो कहकर वह अपरिचित व्यक्ति चला गया और महाराज उस ओर, जिधर से रोदनध्वनि ठहर ठहर कर सुनाई देती थी, चल पड़े।

उस समय खड्गसिंह ने बहुत आपत्ति की और अत में कहा,—"महाराज! आप व्यर्थ सेवकों के रहते, अग्रसर होते है! आप यही रह कर देखिए कि हमलोग उन दुष्टों को अभी परास्त करते है।"

किन्तु खड्गसिंह की बात को महाराज ने नहीं माना। अगत्या सभोने महाराज का अनुसरण किया। महाराज एक हलकी तलवार

म्यान से खैंच,वेगपूर्वक आगे बढ़े;खड्गसिंह उनके बराबर चले और सब सैनिक अर्द्धचन्द्राकार व्यूह रचकर उनके पीछे पीछे चले। जिधर से आर्त्तध्वनि सुनाई देती और प्रकाश की चमक आती थी, उसी ओर महाराज बढ़े। ज्यों ज्यों वे अग्रसर होने लगे,प्रकाश भी आर्त्तनाद के संग स्पष्ट बोध होने लगा। यद्यपि सघन बन था, पर वहां सघन वृक्षावली नहीं थी, अतएव चन्द्रालोक से वहांका दृश्य स्पष्ट दीख पड़ता था। थोड़ी दूर पर से ही देखा गया कि दोसौ यवनों के मध्य में दो स्त्रियां बैठी रोदन कर रही हैं और आठ दस प्रधान यवन उन्हें वेष्टन किए उन पर अत्याचार करने का उपाय कर रहे हैं! वे परस्पर कुछ कुछ बातें भी करते जाते थे, पर दूरी के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ता था,परन्तु उनलोगों का मद्यपान करना दिखाई देता था।

यह देख खड्गसिंह ने कहा,—"अब यह स्पष्ट होगया कि ये लोग पठान और तुगरल के अनुचर हैं। अतएव, देव! यदि अनुमति दीजिए तो इन दुष्टों का शीघ्र संहार करके स्त्रियों को निरापद आपके समीप लेआऊं।"

महाराज,—"देखो, तुम हमारे साथ रहना। हम स्वयं इस कार्य्य में अग्रसर होने की इच्छा रखते हैं। स्त्रीरक्षा करना वीर का धर्म्म है, उससे हम बंचित नहीं होसकते; तिस पर इन स्त्रियों की रक्षा से!"

यों कहकर महाराज ने बड़े बेग से उन आततायियों पर ऐसा धावा किया कि वे यवन एकाएक अपने सिर पर मौत का आपहुंचना देख कर एकदम घबरा गए। उन यवनो को महाराज के वीर सैनिकों ने चारोंओर से घेर लिया और जबतक वे दुराचारी अपने को सम्हालते, आधे से अधिक काट डाले गए। महाराज बड़ी वीरता से यवनों का संहार करते करते वहां पर जा पहुंचे, जहां पर दो सुन्दरी बैठी हुईं अपने दुर्भाग्य को रो रही थीं; किन्तु अब इस लड़ाई को देख, चकित हो, जहांकी तहां भय से ठिठक रही थीं।

उन स्त्रियों की ओर देख, महाराज ने अपनी सुरीली आवाज में कहा,—"अब भय नहीं है, हम आगए।"

योंहीं देखते देखते बात की बात में तीन हिस्से यवनों के काट डाले गए। इतनेही में उसमान, जो उस गरोह का अफ़सर था,

झपट कर महाराज के ऊपर पीछे से वार किया ही चाहता था कि खड्गसिंह ने, जो बराबर महाराज की अंगरक्षा के लिये उनके साथ थे, उसमान का वार अपनी तल्वार पर रोका और गरज कर कहा,—"मूढ़! अब मरने के लिये प्रस्तुत हो!"

इस पर उसमान खड्गसिंह के साथ भिड गया और कड़क कर बोला,—"रह काफ़िर, बद्ज़ात, हिंदू! ठहर, अभी तुझे जहन्नुम मे भेज देता हूं। ठहर ठहर।"

"चुप रह, नरराक्षस!" यों कह खड्गसिंह ने एक ही वार में उसे काट गिराया; और देखते देखते सारा मैदान यवनो की लाश से भर गया। उस गहरी मार काट में यद्यपि पचास सैनिक महाराज के भी मारे गए, पर इन अत्याचारी यवनों मे से एक भी जीता बच कर भागने नहीं पाया। महाराज और खड्गसिंह की निपुणता से एक भी यवन भागने नही पाया, यह अद्वितीय रणपाडित्य का विषय है।

दोनो स्त्रियां यद्यपि भय से म्रियमाण होरही थीं, किन्तु शत्रुओं का संहार देख कर कुछ स्वस्थ हुईं और 'पुनः कोई विपद् न आवै,' यह सोच कर भय से नीरव हो, जहा की तहां बैठी रहीं और मनही मन अपने पक्ष समर्थन करनेवालों को असंख्य धन्यवाद देती रहीं।

दस्युदल के दलन होने पर सैन्यगण महाराज का इंगित पाकर वहांसे हट गए और महाराज उन स्त्रियों के समीप जाकर कहने लगे,—"प्यारी मल्लिका! और सरला! अब भय नही है, अतएव अपना चित्त ठिकाने करो!"

सरला महाराज नरेन्द्रसिंह को सामने देख उनके पैरों पर गिर-कर रोदन करने लगी। महाराज ने उसे उठाकर कहा,—"स्थिर हो, सरला! अब भय नहीं है।"

मल्लिका, उत्सुक नयनों से नरेन्द्र की ओर देखती और अश्रु-विमोचन करती थी। सरला ने प्रकृतिस्थ होकर करुणा भरे स्वर से कहा,—"महाराज! इस उपकार के ऋुण में दासी सदा बंधी रहैगी, यह ऋुण कदापि प्रतिशोध नहीं कर सकेगी। महाराज! आपकी महिमा और ईश्वर की दया असीम है, नहीं तो हमलोगों का सर्वनाश होचुका था।"

महाराज,—"सरला! भला यह कौनसी बात है! हमने तुम्हारा क्या उपकार किया है! यह तो अपना कर्त्तव्यही है। इसमे हमारी

विशेष प्रशंसा क्या है! और इस कार्य्य मे ईश्वर की महिमा ही को अशेष धन्यवाद देना चाहिए और साथ ही उस व्यक्ति को, जिसकी सहायता से हम तुम्हारे उद्धार करने में समर्थ होसके।"

सरला ने प्रकृतिस्थ होकर कहा,—"महाराज! आप वस्तुतः स्वर्गीय पुरुष हैं। हाय! आज आपसे मन्दिर मे साक्षात की बात थी, पर यहां आप किस प्रकार आगए!"

महाराज,—"सरला! हम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मंदिर मे अकेलेही गए थे, पर उसे भग्न और मानवशून्य देख कर हमने यह निश्चय किया कि तुमलोग कहीं कार्य्यवशात् स्थानान्तर में गई होगी! ऐ प्यारी मल्लिका! तुम अब क्यों व्यर्थ आंसू गिरा रही हो? शांत होवो।"

सरला,—"महाराज! आज मध्याह्न के समय यवनों ने हमलोगों को धृत किया और यहां तक वे हमें ले आए। उनकी बातों से विदित हुआ कि वे तुगरल के गुप्तचर थे। उन लोगों ने बहुत प्रलोभन दिया, पर फल न पाने से बलप्रयोग करने का बिचार वे कर रहे थे, सोही ईश्वर ने आपको भेज कर परित्राण कराया।"

पाठकों को यह वृत्तान्त विदित है कि उसी भग्नमंदिर मे से सरला और मल्लिका को यवन बांध लेगए थे। और यह भी पाठक जानते हैं कि अपने प्रतिज्ञानुसार महाराज नरेन्द्रसिंह एकाकी मल्लिका से मिलने के लिये पुनः उस नियत तिथि (पूर्णिमा) को उस मन्दिर में गए थे; परन्तु वहां पहुंचकर उन्होंने मल्लिका के रहने के स्थान को बिलकुल शून्य और उजाड़ पाया। उसी समय वहां पर महाराज से वह पूर्वपरिचित, अपरिचित व्यक्ति मिला और उसने सरला तथा मल्लिका का यवनों के हाथ में पड़ जाने का वृत्तान्त संक्षेप में कहा और उन्हें अति शीघ्र उस नियत स्थान पर बुलाया, जहां पहुंचने पर वह अपरिचित व्यक्ति वृक्ष पर से कूद कर महाराज से मिला और उन्हे आततायी यवनों पर छापा मारने के लिये कहकर वहांसे चला गया था।

निदान, महाराज ने सरला और मल्लिका से उस अपरिचित की सम्पूर्ण सहायताओं का हाल, जो कुछ कि उसने अब तक की थीं, संक्षेप में कह कर अन्त में यों कहा,—"यदि आज भी उस अपरिचित ने उस भग्नमंदिर मे उपस्थित रह कर हमारा उपकार

न किया होता तो हम इतनी जल्दी तुमलोगों के उद्धार करने में कदापि समर्थ न होते। किन्तु, हा, इतने कष्ट तुमलोगों को हमारे ही कारण उठाने पड़े थे, क्योंकि यदि हम उस दिन वहां पर उस बेपरवाही के साथ अपने घोड़े को न छोड़ देते तो उसमान को कदापि तुम्हारे गुप्त निवासस्थान का पता न लगता।"

ये बातें जब तक होती रहीं, मल्लिका और नरेन्द्र नयनों का सुख लूट रहे थे। यह भाव सरला ने जाना और आनन्द भी माना। फिर वह छल कर वहासे सरक गई, अतएव अवसर देखकर महाराज ने मल्लिका का सादर हाथ पकड़ कर अपने उत्तरीय से उसके नेत्र पोंछ कर कहा,—"प्यारी, मल्लिका! अब व्यर्थ क्यों आंसू बहाती हो? इससे क्या हमें कष्ट न होगा?"

मल्लिका ने महाराज के कंधे पर अपना सिर धर कर कहा,—"प्राणनाथ! ये आनदाश्रु हैं, मैंने तो समझा था कि अब इस जन्म में आपके चरणों के दर्शन से वंचित रहूंगी; पर मैं महा भाग्यवती हूं।"

महाराज,—"निःसदेह, तुम बड़ी भाग्यवती हो, किन्तु तुमसे हम अधिक भाग्यवान हैं।"

यों कहकर महाराज ने उसे गले लगाकर उसका गाल चूम लिया, जिससे मल्लिका ने अति लज्जित होकर कहा,—"यह क्या प्यारे! कोई देखेगा तो क्या कहेगा!"

महाराज,—"तो तुम हमें चित्त से नहीं चाहतीं?"

मल्लिका,—"यह वचन बडे कठोर हैं, इसका उत्तर मैं क्या दूं?"

इसके अनतर महाराज ने अपने गले से एक मोती की माला उतार मल्लिका के गले में डालकर कहा,—"इसे देख कर तुम्हें सदा हमारा स्मरण बना रहेगा, और अधिक क्या कहैं?"

मल्लिका,—"यों क्या मैं कभी तुम्हें स्मरण नहीं करती? यह बचन क्या कोमल है!

महाराज,—"तो फिर क्यों विवाद करती हो!"

मल्लिका,—"मैं इसके परिवर्त्तन में तुम्हें क्या दूं?"

महाराज,—"परिवर्त्तन की क्या आवश्यकता है? पर हां!यदि यही तुम्हारी इच्छा हो तो जो चाहो सो दो। हम उसे हृदय से स्वीकार करेंगे!"

मल्लिका की मां ने उसे एक मोती की माला दी थी, उसने उसे

महाराज के गले मे डालकर हँसते हँसते कहा,—"यह क्या तुम्हारे मन लायक है ?"

मल्लिका को रोक कर नरेन्द्र ने कहा,—"इसका मूल्य संसारमात्र की सम्पत्ति से अधिक है।"

मल्लिका,—"तुम मुझे बहुत चाहते हो,तभी ऐसीबातें करतेहो!"

महाराज,—इसमे सदेह क्या है ?"

यों कह कर नरेन्द्र ने मल्लिका को पुनः आलिङ्गन करके उसके कपोल का चुम्बन किया और मल्लिका लज्जित हो कर संकुचित होगई।

यह अवसर सरला ने न छोड़ा और सामने आकर हँसते हँसते नरेन्द्र से कहा,—"तो क्या मैं खालीहाथ घर जाऊगी?"

यह सुनकर मल्लिका बहुत लज्जित हुई, इसलिये कि सरला ने सब देख लिया। और नरेन्द्र ने हँस कर अपने हाथ से एक जड़ाऊ कंगन उतार कर सरला को देदिया। इसी अवसर मे सेना मे महा कोलाहल आरंभ हुआ। सरला और मल्लिका भय से कांपने लगी, और नरेन्द्र आश्चर्यित होकर इधर उधर देखने लगे कि यहक्याहै!

उन्होंने ऊधेश्वर से कहा,— "यह कैसा कोलाहल है ?"

"आपका दास,"यों कहते कहते एक बालिका का हाथ पकड़े हुए विनोद ने आकर कहा,—"आपका दास !"

नरेन्द्र,—"यह क्या, विनोद! ऐ यह कौन बालिका है और इसे तुम कहासे लिए आते हो ?"

विनोद,—"यह अनाथा बालिका यवनों के हाथ से यातना भोग रही थी, दैवसयोग से उसी ओर से हम भी आपका पत्र पाकर आपके दर्शनार्थ आरहे थे; उसी बन में दस्युओं के हाथ से इसकी रक्षा की।"

नरेन्द्र,—"तुमने बहुत ही अच्छा काम किया। क्षत्रियों का यही धर्म है। अस्तु, वे यवन कौन थे ?"

विनोद,—"तुगरल के चर छोड़ कर और कौन होंगे ?"

नरेन्द्र,—"इस बालिका का परिचय तुमने पाया ?"

विनोद,—"विशेष नहीं, किन्तु जान पड़ता है कि यह किसी भूम्यधिकारी क्षत्रिय की कन्या है।"

किन्तु, पाठक ! विनोद ने यह सरासर झूठ कहा; क्योंकि वह

बालिका अपना सब परिचय उन्हें दे चुकी थी, किन्तु कुछ समझ बूझ कर उस समय विनोद ने बिलकुल झूठ कहा। अस्तु।

नरेन्द्र,—"ठीक है, हमने भी इस वन में यवनों के हाथ से इन दो स्त्रियों का उद्धार किया है।"

पाठक! गत किसी परिच्छेद में जिस बालिका का एक युवक ने उद्धार किया था, वह विनोद ही थे। यह आप लोगों को विदित ही है कि जब वन में रात्रि के समय महाराज और विनोद का सङ्ग छूट गया था, तो विनोद ने दूतों को इधर उधर भेज कर महाराज का अनुसंधान कराया था, पर कहीं पता न लगा था। अन्त में महाराज बादशाह से मिल कर राज्य पर आए थे और नियत समय पर मल्लिका से मिलने के लिये गए थे; पर जब वहां उस अपरिचित ने कुछ और ही वृत्तान्त सुनाया तो वे अपने सेनानिवास में पहुंच, खड्गसिंह तथा कुछ सैनिकों के साथ इधर आए थे और विनोद को कुछ सवारों के साथ पीछे से आने के लिये एक पत्र लिखकर रख आए थे, क्योंकि उस समय विनोद सेनानिवास में गश्त लगाने चले गए थे। सोही विनोद मार्ग में उस बालिका का उद्धार करके उसे अपने साथ लिये हुए महाराज से आ मिले थे।

इधर ये बातें हो रही थीं कि मल्लिका ने "हाय! बहिन, सुशीला तू यहां कहां!" यों कहकर विनोद जिस बालिका को लाये थे, उसे गले लगा कर रोदन करने लगी। इस दृश्य से सब चमत्कृत हुए।

नरेन्द्र ने कहा,—"यह क्या कौतुक है! सरला! यह बालिका कौन है?"

सरला,—"महाराज! यह अतिशय आश्चर्यमय दृश्य है; किन्तु एक भिक्षा है, यदि मिलै।"

नरेन्द्र,—"ऐसी कौन वस्तु है, जो तुम्हें नहीं दे सकते?"

सरला,—"इस लड़की को जबतक कि आप हमलोगों का पूर्ण परिचय न पावें, हमारे सङ्ग कर दें। इसे हमलोग अपने यहां लेजायंगी।"

नरेन्द्र,—"क्यों, यह क्या कह रही हो? इसमें भी क्या कुछ रहस्य है?"

सरला,—"निःसंदेह, किन्तु आपसे इतना ही कहती हूं कि यह मल्लिका की छोटी बहिन है।"

यह सुन कर विनोद और नरेन्द्र के मुख का रङ्ग दमक उठा

और नरेन्द्र ने कहा,—" सरला ! यह सुशीला क्या मल्लिका की बहिन है ? पहिले तो हमने इसे नहीं देखा था !"

सरला,—"महाराज ! शान्त होइए, इसमें विशेष वक्तव्य है, आप से तब सविस्तर निवेदन करूंगी, जब पुनः आपसे मिलूंगी।"

नरेन्द्र ने विनोद की ओर देखा और उनका भाव समझ कर विनोद ने कहा,—"इसमें मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है, जब कि सुशीला का उन लोगों से संबन्ध है। यदि सुशीला भी ऐसाही चाहती हो तो यह इन लोगों के साथ जा सकती है।"

अनंतर नरेन्द्र ने सुशीला की इच्छा जान कर सरला से कहा,—"अब क्या इच्छा है ? कहा जाओगी ? उसी भयानक मन्दिर में ?"

सरला,—"नहीं महाराज ! वहां अब हमलोग निरापद नहीं रह सकेंगी, क्योंकि शत्रुओं ने हमारा पता जान लिया है।"

नरेन्द्र,—"तब कहा जाओगी ?"

सरला,—"एक दूसरी जगह जाऊंगी।"

नरेन्द्र,—"कहा ? वह जगह कहा पर है ?"

सरला,—"दासी का अपराध क्षमा हो तो कुछ निवेदन करे ?"

नरेन्द्र,—"छिः ! यह बात तुम्हें शोभा देती है ? अभी तक तुम इतनी चापलूसी क्यों करती जाती हो ?"

सरला,—"जब तक आगामी वार आपसे साक्षात् न हो, कृपा कर दासी से कुछ भी परिचय की जिज्ञासा न करें, किन्तु यह प्रण करती हूं कि अबकी वार अवश्य सब रहस्य आपसे कहूंगी !"

नरेन्द्र,—"सरला ! हमारा प्राण विकल होरहा है। क्या अब भी हमारा विश्वास तुम्हें नहीं है ?"

सरला,—"है, महाराज ! इस बात का ईश्वर साक्षी है; पर कई कारणों से अभी मैं कुछ कह नहीं सकती।"

नरेन्द्र,—"तुम्हारी बातों ने हमें अत्यत चचल कर दिया है।"

सरला,—"थोड़ा और धीरज धरिए।"

नरेन्द्र,—"अच्छा, पालकी तैयार है, उस पर तुमलोग सवार हो जाओ; हम सैनिकों को संग करके तुम्हें निरापद तुम्हारे स्थान पर पहुंचा देंगे।"

सरला,—"किन्तु, एक प्रकार से।"

नरेन्द्र,—"क्या !"

सरला,—"यदि आप उन लोगों से हमारे स्थान का पता न पूछें, जो कि हमारे संग जायगे। और वे भी विश्वस्थ हों कि इस बात से आपको विघ्न न करें।"

नरेन्द्र ने अट्टहास्य करके कहा,—"सरला! धन्य हो! तुम्हारी जैसी आश्चर्य-रमणी हमने आज तक नहीं देखी थी!"

सरला,—"मैं निःसदेह आपसे बड़ी लज्जित हूं, किन्तु क्या करू, निरुपाय हूं!"

नरेन्द्र,—"अस्तु! अब कहां, और कब भेंट होगी?"

सरला,—"उसी मन्दिर में, आगामी रविवार को; और उसी दिन आप हम लोगों का सब परिचय पावैंगे!"

नरेन्द्र,—"जैसी तुम्हारी इच्छा, हम उस दिन अवश्य वहीं, उसी समय मिलैंगे!"

अनन्तर सरला, मल्लिका और सुशीला शिविका पर आरूढ़ हुईं और खड्गसिंह को समझा बुझाकर नरेन्द्रसिंह ने कुछ सैनिकों के साथ सरला के सङ्ग कर दिया।

उनके जानेपर नरेन्द्रसिंह सरला और मल्लिका के विषय में जितना वे जानते थे, विनोद को सुनाकर बोले,—"मित्र! यह विचित्र लीला है!!!"

विनोद,—"मित्र! यह व्यापार क्या है? ये स्त्रियां कौन थीं?"

नरेन्द्र,—"वयस्य! निश्चय जानों, हमें भी इनका ठीक ठीक वृत्तान्त अभी तक विदित नहीं है!"

विनोद,—"भई! अवश्य यह बड़े आश्चर्य का विषय है!"

नरेन्द्र,—"देखैं! आगे क्या क्या फल फलता है!"

विनोद,—"ये स्त्रियां कहीं धोखा न दें, क्योंकि— — — —"

नरेन्द्र ने रोक कर कहा,—"नहीं! नहीं, ऐसी खोटी बात मुहं से न निकालो!"

विनोद ने यह समझ लिया था कि,—'नरेन्द्र मल्लिका पर पूर्ण रूप से आसक्त होचुके हैं;' अतएव इस विषय में विशेष तर्क वितर्क करना व्यर्थ समझ कर नहांसे चलने का परामर्श स्थिर किया। किन्तु रात्रि व्यतीत हो चुकी थी, अतएव प्रातःकृत्य समाप्त करके चलने का विचार स्थिर हुआ और यह भी इच्छा थी कि तबतक कदाचित् खड्गसिंह भी उन स्त्रियों को पहुंचा कर लौट आवेंगे।

पाठक! आपने एक ग्राम के एक प्रकोष्ठ में सुशीला और मल्लिका को देखा था। सुशीला इसी घटना से मुक्त होकर मल्लिका के संग गई थी; और सरला इस घटना के अनंतर, जो प्रौढ़ा से आज्ञा मांगती थी, वह भी आपको स्मरण होगा! जिस दिन सरला ने नरेन्द्र से मिलने की प्रतिज्ञा की थी, उसी दिन वह प्रौढ़ा से आज्ञा लेकर नरेन्द्र के दर्शनार्थ बहिर्गत हुई थी। पर वह साक्षात आगे होगा; अभी धैर्य्य धारण करिए।

प्रातःकाल सब कोई नित्यकृत्य से निश्चिन्त होकर यात्रा का उद्योग कर रहे थे, इसी अवसर में खड्गसिंह ने आकर कहा,—"महाराज! उन लोगों को एक ग्राम में निरापद पहुंचा आए।"

नरेन्द्र,—"अच्छा, अब उस विषय को छोड कर यात्रा करो!"

अनंतर सब कोई वहांसे आगे बढ़े और नरेन्द्र ने खड्गसिंह से मल्लिका का पता कुछ भी न पूछा।"

पाठक! मन्त्री महाशय की कन्या मल्लिका जब अपने माता-पिता के यहां थी, तो उसे देखने का अवसर नरेंद्रसिंह को बहुतही कम मिलता था। यही कारण था कि वे मल्लिका से मिलने पर उसे पहचान नही सके थे। किन्तु मंत्री बिनोदसिंह ने एक तो सुशीला से कुछ वृत्तान्त सुना था, दूसरे वे मल्लिका को चीन्हते थे; क्योंकि वह (मल्लिका) उनके ताऊकी ही तो लडकी थी। सो बिनोदसिंह ने देखते ही मल्लिका और सरला को पहचान लिया था, पर उस समय सरला ने उनकी ओर कुछ ऐसा इशारा किया था कि जिसे समझ कर वे बिलकुल अनजान बन गए थे और नरेन्द्र से यों पूछने लगे थे कि,—"ये स्त्रियां कौन थीं!"

अठारहवां परिच्छेद.

विविध प्रसङ्ग।

"संसारचक्रे भ्रमति त्वितस्ततः।
(भागवत)

जिस समय से (अर्थात सन् १२७६ ई०से) हमारा उपन्यास प्रारम्भ होता है, उससे पच्चीस वर्ष पूर्व की कुछ घटनावली का हम इस परिच्छेद में वर्णन करेंगे।

उस समय बिहार में एक बड़े भारी भूम्यधिकारी (ज़िमीदार) रहते थे। उनका नाम राघवेन्द्रसिंह था। वे बड़े प्रतिष्ठित, धनाढ्य, प्रतिभाशाली और वीर पुरुष थे। उस समय बिहार में उनका बड़ा मान था और बिहारी लोग प्रायः बड़े से बड़े विवाद में उन्हें अपना पञ्च मानते और उनके न्याय से वादी प्रतिवादी दोनों संतुष्ट होते थे।

उनकी स्त्री का नाम, जो भोजपुर के एक बड़े भारी ज़िमीदार सज्जनसिंह की (१) कन्या थीं, निर्मला देवी था। राघवेन्द्रसिंह को अपनी इसी (निर्मला) सती स्त्री से एक कन्या हुई, जिसका नाम कमला था। कुछ दिन बाद अपने दूरके नाते के एक निस्सन्तान भाई के मरने पर उनकी अनाथा कन्या को भी राघवेन्द्रसिंह ने अपने यहां स्थान दिया था। उस कन्या का नाम विमला था। विमला कमला से छोटी थी।

जब ये दोनों कन्याएं विवाह योग्य हुईं तो राघवेन्द्रसिंह ने अपनी बड़ी कन्या (कमला) का विवाह तो भागलपुर के महाराज महेंद्रसिंह के प्रधानमन्त्री वीरेन्द्रसिंह के साथ कर दिया और दूसरी (छोटी) कन्या (विमला) का विवाह मुंगेर के एक प्रतिष्ठित ज़िमीदार देवेन्द्रसिंह के साथ किया गया। विवाहिता होने के अनन्तर दोनों कन्याएं अपने अपने पति के घर रहने लगीं।

कन्याओं के विवाह के थोड़ेही दिनों पीछे राघवेंद्रसिंह परलोकवासी हुए और उनकी भार्या (निर्मला) ने अपने पति का सहगमन

(१) जिनके वंश में भोजपुर के महावीर सुप्रसिद्ध बाबू कुंवरसिंह हुए।

किया। राघवेंद्रसिंह को अपनी दो कन्याओं के अतिरिक्त और कोई संतति न थी, अतएव उनके मरने पर उनकी सारी सम्पत्ति आधे आध कमला और बिमला को मिल गई।

वीरेंद्रसिंह के छोटे भाई धीरेंद्रसिंह थे। उनकी पत्नी अपने एकमात्र पुत्र को कमला की गोद में डाल परलोकवासिनी हुई थीं। तब से फिर धीरेन्द्रसिंह ने पुनः अपना विवाह न किया और अपने पुत्र विनोद को कमला ही के अर्पण किया। यहांतक कि फिर वे विनोद को कभी अपना पुत्र न कहते और यदि कोई पूछता तो यही उत्तर देते कि,—'यह हमारी भौजाई के ही पुण्य का फल है; अर्थात उन्हीं का पुत्र है।' इसी लिये हमने भी विनोद को वीरेन्द्रसिंह का भतीजा ही लिखा है, न कि पुत्र।

बहुत काल व्यतीत होने पर भी कमला को कोई पुत्र न हुआ। हां, एक कन्या अवश्य हुई, जिसका नाम मल्लिका है और जो हमारे उपन्यास की प्रधान नायिका है।

मुंगेर के ज़िमीदार देवेन्द्रसिंह की पत्नी अपनी एकमात्र पुत्री सुशीला को, जो मल्लिका से दो बरस छोटी थी, छोड कर परलोक सिधारीं। उसीके थोड़े ही दिनों पीछे देवेंद्रसिंह भी परलोकवासी हुए और उनकी ज़िमीदारी को जब दुराचारी तुगरल ने अपने एक मुसलमान मुसाहब को देदिया और सुशीला को पकड़ना चाहा तो उसे गिरिजा नाम की धात्री मुंगेर से लेकर भागलपुर भाग आई।

गिरिजा ने सोचा था कि,—'सुशीला को उसकी मौसी कमला के पास पहुंचा दें;' किंतु भागलपुर आने पर जब उसने कमला, उसके पति और उसकी पुत्री (मल्लिका) के अन्तर्धान होने का वृत्तांत सुना, जो कि लोगों में अतिगुप्त, किन्तु भयानक रीतिपर फैला हुआ था; तो वह सुशीला को धीरेन्द्र या विनोद के अधीन न कर सकी और उसे लेकर वह स्वयं भागलपुर के पास एक गांव में रहने लगी। सुशीला को लेकर भागने के समय गिरिजा कुछ रत्नादि अपने साथ लाई थी, उसीसे दोनों का एक प्रकार से कालक्षेप होता था।

गिरिजा क्षत्रियकन्या थी, वह विधवा तथा वृद्धा थी और उसने सुशीला को जन्म से पाला था। जब वह गांव में, जिसका नाम बेलगांव था, रहने लगी तो उसके साथ एक परम सुन्दरी कन्या को देख लोग आपस में कानाफूसी करने लगे।

गिरिजा के परोस में लालन नाम की एक कुलटा रहती थी, जिसने अपने कुलगौरव और सतीत्व का नाश करके दुराचारी तुगरल की कृपा संचय की थी। यद्यपि लालन ऐसे चालचलन की थी, किन्तु बराबर आने जाने और मेलजोल बढ़ने, तथा उसकी चालचलन के रहस्य को न जानने के कारण सुशीला को उसके साथ स्नेह होगया था। और वह (लालन) सुशीला के सारे वृत्तांत को जान और उस वृत्तांत को नव्वाब पर प्रगट कर उसे नव्वाब की अंकशायनी बनाने का उद्योग करने लगी थी।

एक दिन मध्याह्न के समय, जब गिरिजा भोजन आदि से निवृत्त होकर वाल्मीकि रामायण लेबैठी और उसे पढ़कर सुशीला को उसका अर्थ समझाने लगी थी, इतनेही में वहां लालन आगई।

इधर उधर की बहुतसी बातों के होने पर सुशीला की ओर मुस्कुराहट के साथ देखकर लालन ने गिरिजा से कहा,—"क्यों जी ! बूढ़ो मा ! सुशीला तो बहुत स्यानी होगई, इसलिये अब इसका व्याह क्यों नहीं करतीं ? "

गिरिजा,—"लालन ! सुशीला का मुझे पूरा ध्यान है, किन्तु क्या करूं, जबतक इसके योग्य अच्छा घर-बर न मिले, बिचारी लड़की को कुए में कैसे डाल दूं ? "

लालन,—" ठीक है, देवेन्द्रसिंह की कन्या के योग्य ही घर मिलना चाहिए; किन्तु एक बात है। "

गिरिजा,—"क्या, बात क्या है ? "

लालन,—"यही कि यदि तुम सुशीला को मुझे देदो तो मैं अभी दसहज़ार रुपए तुम्हें दूं। "

लालन की इस बेढंगी बात से गिरिजा और सुशीला,—दोनो अत्यंत जल उठीं; और गिरिजा ने बड़े क्रोध से कहा,—"लालन ! यह बात यदि आज कोई कुलटा या वेश्या कहती तो मुझे उतना आश्चर्य न होता, जितना कि तुम्हारे मुंह से ऐसी बात के सुनने से हुआ। "

लालन वास्तव में कैसी थी, यह बात न तो गिरिजा को ही मालूम थी और न सुशीला को; अतएव वह गिरिजा की बात से जल उठी और बोली,—"क्या, दस हज़ार रुपए से बढ़कर सुशीला की इज्ज़त है ? "

गिरिजा,—"बस, बस, लालन! तेरी भलमन्सी आज मुझे मालूम हुई! अब तू अभी मेरे सामने से दूर हो और आज पीछे फिर कभी तू अपना काला मुखड़ा मुझे न दिखलाइयो।"

यह सुन, ताव पेंच खाकर लालन उठ खडी हुई और यों कहती हुई वहांसे चली गई कि,—"भला हरामज़ादी! इस शेख़ी का मज़ा आजही तुझे ऐसा मिलेगा कि तू भी याद करेगी।"

लालन के जाने के दो घंटे बाद कई यवन घर मे घुस पड़े और गिरिजा को मार, सुशीला को बांध और उसे एक पालकी में बंद करके एक ओर को चल दिए। उस समय उन आततायियों के साथ लालन नहीं थी; परन्तु यह ठीक है कि यह कार्रवाई उसीके इशारे से तुगरलखां के हुक्म से की गई थी, क्योंकि लालन का यह काम था कि स्वयं तो वह नव्वाब से भ्रष्टा होही चुकी थी, इसके अतिरिक्त वह नव्वाब तुगरल की प्रसन्नता के लिये भले घर की लडकियों को बहुंका कर नव्वाब के पास पहुंचाया करती थी, इसीसे उसे ख़ूब गहरी आमदनी होती थी।

पाठक! सुशीला को कैद करके यवन जिस बन में पहुंचे थे, वहीं बिनोदसिंह ने पहुंचकर सुशीला का उद्धार किया था और फिर वे उसे लेकर नरेन्द्र से जा मिले थे, और वहांसे वह मल्लिका तथा सरला के साथ गई थी।

यहांपर एक बात हम और कहकर इस परिच्छेद को समाप्त करेंगे। वह बात यह है कि अभी हम ऊपर लिख आए हैं कि भागलपुर आने पर गिरिजा को मल्लिका आदि के अन्तर्धान होने का कोई भयंकर जनरव सुनपड़ा था, जो अति गुप्त रीति पर लोगों में फैला हुआ था, जोकि अवश्य किसी दुष्ट की दुष्टता से फैला हुआ था। सो भी वह इस उत्तमता के साथ फैला हुआ था कि महाराज नरेन्द्रसिंह तथा उनके सच्चे मित्रों के कानों तक उस जनरव की जूं तक नहीं रेंगने पाई थी। तो वह जनरव कैसा था! यही कि,—"मानो महाराज नरेन्द्रसिंह ही ने मंत्री को मार उनकी स्त्री कन्याओं को अपने अन्तःपुर में अवरुद्ध किया है!!!"

किन्तु यह सर्वथा निर्मूलक जनरव किसी दुष्ट की दुष्टता का परिणाम था, यह बात हम आगे चल कर प्रगट करेंगे।

उन्नीसवां परिच्छेद.

चिन्ता।

"चिन्ताज्वरो मनुष्याणां चितादपि भयङ्करः।"
(नीतिदर्पण)

अपरान्ह काल के समय निर्जन प्रकोष्ठ में एक षोड़शी बाला बैठी चिता में मग्न थी। कर पर कपोल न्यस्त करके वह बिचारसागर का अवगाहन कर रही थी। सन्मुख एक मोती की माला रक्खे और दक्षिण हस्त में एक नामाङ्कित हीरे की अगूठी धारण किए स्थिर भाव से आंख बद कर वह कुछ सोच रही थी। वह माला और अंगूठी को उत्सुक नेत्रों से देखती और फिर उठा कर उनका चुम्बन करती; पुनः पूर्ववत् उन्हें रख कर चिता करती थी। बार बार वह दीर्घनिश्वास और अश्रुबिंदु त्याग करती थी। वह अञ्चल द्वारा आंसू पोंछ कर कभी नख से भूमि को खनन करती और कभी तृण तोड़ती थी। उसकी ऐसी शोचनीय अवस्था थी कि वह एक प्रकार से आत्मविस्मृत होगई थी, पर बार बार मुद्रिका और माला को देखती और उन्हें उठा कर चुम्बन करती थी।

उसी प्रकोष्ठ में अपर द्वार से एक प्रौढ़ा धीरे धीरे प्रवेश करके बाला की शोचनीय अवस्था जान, चुपचाप उसके पीछे आकर खड़ी होगई। बालिका इतनी चिताग्रस्त थी कि उसे अपर व्यक्ति का आना नही जान पडा। वह स्वतंत्रता से अपने कार्य्य में लगी थी।

प्रौढ़ा बालिका के पीछे खड़ी खड़ी उसके कौतुक को देख देख कर मनहीमन आनंदित और चिंतित होने लगी। उसकी आंखों में आंसू भर आए और उसने चट अचल द्वारा आंसू पोंछ कर बालिका के सन्मुख आते आते कहा,-"बेटी! मल्लिका! यह हार और अंगूठी तू कहां से लाई?"

यह सुन सहस्रो बृश्चिकदंशन और करोड़ों अशनिपतन से जो यंत्रणा अनुभव नहीं होती, उससे भी अधिक यंत्रणा उस समय उस बालिका को हुई, जो वस्तुतः मल्लिका ही थी, और वह हत-चेतन होकर एक बार माता की ओर देख कर रोदन करने लगी।

प्रौढ़ा कमला देवी थीं। जिस दिन सरला नरेन्द्र को बुलाने के

लिए गई थी, उसी दिन पूजन से निश्चिन्त होकर कमलादेवी घर में आती थीं, सोई मल्लिका की यह दशा देख आनन्दित होकर बोली थीं। उन्हें मल्लिका का सब रहस्य सरला से विदित होगया था, जिससे वे निज अनुराग स्रोत को न रोक सकीं। उस समय सुशीला वहां पर नहीं थी।

कमला ने मल्लिका का आंसू पोंछ उसे गले लगा कर कहा,—"बेटी, मल्लिका! तू बड़ी भाग्यवती है! देख भागलपुर के महाराज ने यह वस्तु तुझे दी है। सावधान! इसे यत्न से रखियो।"

कमला की बातों से मल्लिका के हृदय में साहस का उदय हुआ और वह लज्जा से मृयमाण होकर कहने लगी,—"मां! मैं नहीं लेती थी, किन्तु वे हठ से इसे दे गए हैं। मैं इसे अभी दूर कर दूंगी। मां! मेरा इसमें क्या दोष है?"

यों कह कर मल्लिका रोदन करने लगी। कमलादेवी ने उसका मुख चुम्बन और अश्रुमार्जन करके कहा,—"डर क्या है, बेटी! इसमें क्या क्षति है? वेही देगए हैं, तो क्षति क्या है? सावधानी से इसे अपने पास रक्खो—सुशीला कहां गई है?"

कमला ने मल्लिका का ध्यान दूसरी ओर लाने के छल से कहा,—"सुशीला कहां गई है?"

मल्लिका,—"क्या जानूं, मां! बहुत देरसे वह उधर गई है।"

कमला,—"अच्छा, मैं उसे भेजती हूं।"

यों कह और मल्लिका को उसी अवस्था में छोड़कर कमलादेवी वहांसे चिन्ता करती चली गईं। क्षण काल के अनन्तर उसी गृह में सुशीला ने प्रवेश किया। सुशीला को आते देखकर मल्लिका ने अंगूठी और माला छिपाना चाहा, पर मनोरथ बिफल हुआ; क्योंकि उसने मल्लिका का हाथ पकड़ कर माला और अगूठी छीन लिया और कहा,—"भला, मल्लिका जीजी! भला यह बात! और मुझी से चोरी? अच्छा समझ लूंगी।"

मल्लिका,—"चोरी काहे की! क्या तेरा मुझे डर पड़ा है, सुशीला!"

सुशीला,—"नहीं डर काहे का! तो फिर छिपाती क्यों थीं?"

मल्लिका,—"क्यों छिपाऊं? और तुझसे? ऐं! मुझसे ही ऐसी बात?"

सुशीला,—"इससे हानि क्या हुई? जीजी! ऐं तुम इतना चिढ़ती क्यों हो?"

मल्लिका,—"तेरे करने से मेरी क्या हानि होगी ?"

यों कह कर मल्लिका ने सुशीला का हाथ थाम कर उसे चूम लिया और उसके हाथ में एक अंगूठी देखकर हँसते हँसते कहा,—"क्योंरी ! तू तो निरी गङ्गाजल बनी जाती थी ! बता यह क्या है ?"

सुशीला,—"क्या ! क्या हुआ ?"

मल्लिका,—"तेरा सिर और क्या ? बेचारी बड़ी भोली है, दूध पीती है, कुछ समझती ही नहीं । बता यह क्या है ?"

सुशीला,—"है क्या ? कुछभी तो नहीं है ?"

मल्लिका,—"कुछ नहीं है ? तो फिर विनोद भैया के हाथ की अगूठी तेरी अंगुली में कहांसे आई ?"

इतना सुनते ही सुशीला का मुख लज्जा से लाल होगया ! बात प्रकट होगई और उसके छिपाने का अवसर न देख कर वह हताश होगई और क्षणभर के अनन्तर लज्जित भाव से बोली,—"मल्लिका जीजी ! इसी अगूठी राड ने मेरी सब बातों पर पानी फेर दिया, इसलिये इसे अभी उतार कर मैं फेंक दूंगी ।"

मल्लिका,—"फेंकना था तो दूसरे से लिया क्यों ?"

सुशीला,—"मैं तुम्हारे पामन पड़ूं, जीजी ! मुझे न छेड़ो । मल्लिका जीजी ! मुझे क्षमा करो ।"

मल्लिका,—"इस अपराध की क्षमा नहीं है ।"

सुशीला,—"तो यह लो ।"

यों कहकर सुशीला अगूठी उतारना चाहती थी कि मल्लिका उसका हाथ थाम कर उसके गले से लपट गई और उसका मुख चुम्बन करके कहने लगी,—"इतनी देर तक अकेले में बैठी क्या करती थी ?"

सुशीला,—"फिर वही बात; भई तुम बड़ी कठिन हो ।"

मल्लिका,—"इसमें भी कुछ अनुचित हुआ क्या ? अच्छा जाने दे, चल, उद्यान मे चलूं ।"

अनतर दोनों उठ कर उद्यान की ओर गईं । यद्यपि मल्लिका और सुशीला मुंह बोली बहिन थीं, तौभी बाल्यावस्था से इन दोनों मे हास परिहास में निःसङ्कोच भाव होगया था । इसके अतिरिक्त बिनोद के साथ सुशीला का जो सम्बन्ध हुआ था, उसने भी मल्लिका का भाव कुछ बदल दिया था । प्रायः वे कुछ ही बड़ी छोटी थीं, अतएव परस्पर हासविलास में सकोच नहीं रहगया था ।

बीसवां परिच्छेद.
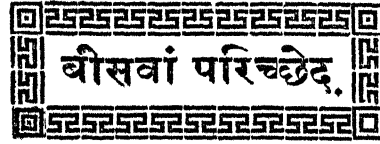
अज्ञातअवज्ञा।

"न वंचनीया प्रभवोऽनुजीविभिः।"

(भारवि)

बादशाह की सेना तुगरलख़ां की सेना की अपेक्षा अत्यल्प थी, क्यों कि बादशाह की सेना अभी भी पटने से नहीं आई थी; और इधर उधर संग्राम छिड़जाने के कारण अभी उसके आने की भी आशा कम थी, एतदर्थ महाराज नरेन्द्रसिंह ने बड़ी बुद्धिमत्ता के संग कूटयुद्ध का अवलंबन करके तुगरल के सर्वनाश करने का सङ्कल्प किया था। शाहज़ादे मुहम्मद को सहस्र सेना के संग उत्तर की ओर, जाफ़र सेनापति को सहस्र सेना के संग दक्षिण की ओर, खड्गसिंह को सहस्र सेना के संग पश्चिम की ओर भेज कर स्वयं विनोद के संग वे पूर्व की ओर रहे। जब जहां पठानों का उपद्रव होता तो शीघ्रता से पहुंच कर उन पर पंजा झाड़ पड़ते, और उनका सर्वनाश करके उनका तम्बू जलाते, और वस्तु लूटते थे। शत्रुओं के पीछा करने पर सघन बन में और गिरिगुहाओं में छिप जाते थे। अतएव शत्रुवर्ग उनका पीछा करके भी उनका अनुसन्धान नहीं पासकते और हताश होकर स्वयं इधर उधर पलायित होते थे। इस प्रकार के युद्ध से पठान लोग महा क्षतिग्रस्त हुए और कौरवकुल की तरह पठानकुल शीघ्रता से नष्ट होने लगा। तथापि तुगरलख़ां इतने पर भी पूर्वापेक्षा अधिक उत्तेजित और क्रोधांध होकर सैन्य संग्रह और दस्युदल बढ़ाकर उत्तरोत्तर अधिक उत्पीड़न करने लगा। बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के प्रायः छटे लुच्चे, बदमाश, लुटेरे, इसके दलभुक्त थे, पर कदापि वे इस बार बादशाह की सेना से विजयी नहीं हुए। तुगरल ने बहुत इच्छा की कि,—'भागलपुर के गढ़ को हस्तगत करे, या उसको ढाह कर भूमिसात् करदे;' किंतु महाराज की सतर्कता से उसे कभी भी सफल-मनोरथ होने का अवसर नहीं मिला, न उसने इस कार्य्य में व्यर्थ कालक्षेप ही किया। किन्तु वह

बात उलटी हुई कि तुगरलखां के तीन चार दुर्ग नरेन्द्रसिंह के हस्तगत होगए थे। एक प्रकार तुगरल का अधःपतन होचुका था, किन्तु बिना प्राणबिसर्जन किए,क्या वह कभी चुप रह सकता था?

एक दिन संध्या के समय जलाशय के तीर महाराज नरेन्द्रसिंह एकाकी विचरण करते थे। अनतिदूर ही उनका शिविर था, विनोद कार्य्यवशात् कहीं गए थे। अतएव एकाकी नरेन्द्रसिंह पदचालना कर रहे थे। इतनेही में एक व्यक्ति ने आकर अभिवादन किया। उसे देखकर नरेन्द्र आश्चर्य्यित हुए,पर जानकर भी अनजान की नाईं वे पूछनेलगे,—

नरेन्द्र,—"अहा! वीरसिंह तुम क्या जीते हो? इतने दिनों तक तुम कहां थे?"

वीरसिंह,—"महाराज दास का अपराध क्षमा हो, यह अधम आपकी सेवा के योग्य नहीं है।"

नरेन्द्र,—"यह बे समय की रागिनी कैसी? अबतक तुम कहां थे और बिना कहे सुने क्यों चले गए थे?"

वीरसिंह,—"नाथ! मैंने घोर पाप किया है, यदि आप क्षमा न करेंगे तो मुझे कहीं शरण नहीं मिलेगी।"

नरेन्द्रसिंह,—"भई! बात तो कहो? क्या समाचार है? हम तुम्हारा बहुत अनुसंधान करते थे, पर पता नहीं लगता था।"

वीरसिंह,—"प्रभो! मैं नव्वाब के यहां हूं, यदि दास का दोष क्षमा हो तो कुछ निवेदन किया जाय।"

नरेन्द्र,—"अस्तु क्षमा किया, अब कहो हमारे यहांसे व्यर्थ कार्य्य छोड़ कर शत्रु के यहां तुम क्यों गए?"

वीरसिंह,—"नाथ मंत्रीजी ने जिस कन्या से मेरा विवाह कर दिया था,वह उन्हीं के घर ही रहती थी। जिस दिन—हा!—मंत्री महाशय का सर्वनाश हुआ, उसी दिन से उनकी स्त्री कन्या के सङ्ग मेरी स्त्री का भी पता नही था।मैंने उन लोगों का बहुत अनुसन्धान किया और नव्वाब के यहां भी उन्हें उत्तमता से खोजा, पर जब कहीं भी उनलोगों का अनुसन्धान नहीं मिला, तो मुझे अत्यन्त कष्ट हुआ और तब मैं उनके लिये निराश हो बैठा। योंही एकसप्ताह बीता था कि एक दिन जब प्रातःकाल मैं सोकर उठा, तो मुझे मेरे पलङ्ग पर एक पुरजा मिला। उसे देखते ही मेरे देवता कूंच कर गए, कलेजा बैठगया और मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो, आपकी नौकरी

छोड़ कर नव्वाब के यहां चला गया। किन्तु हा! अब मुझे विदित हुआ कि वह पुर्जा जाली था और वह कर्म दुराचारी नव्वाब का ही था, तथा मुझे बड़ा भारी धोखा दिया गया।"

नरेन्द्र,—"उस पुरजे में क्या लिखा था?"

वीरसिंह,—"उसका आशय यह था कि,—'आपही ने लोभ में पड़कर मंत्री और उनकी स्त्री को मार डाला है और उनकी कन्या तथा मेरी स्त्री को चुपचाप हरण कर लिया है!' किंतु हा! उस पुरजे पर मैंने विश्वास करके यहांसे चलेजाना उत्तम समझा था। हा! मैं ऐसी बात विचारते ही वज्राघात से क्यों न मर गया! हा! स्वामी की अभक्ति के लिये मुझे किस नरकाग्नि में अनतकाल तक कष्ट भोगना पड़ैगा? अस्तु मैं निर्बुद्धिता के वशवर्त्ती होकर बिना कहे सुने, जाकर नव्वाब के यहा रहने लगा, और आपसे वैरनिर्यातन की लालसा निज हृदय में उत्तरोत्तर दृढ़ करता गया। पर हा! मैंने कैसा घृणित कर्म किया? नाथ, मेरा अपराध यदि न क्षमा होगा, तो मैं अभी आत्मघात करके प्रभु के श्रीचरणों में प्राणविसर्जन कर निजकृत पाप का प्रायश्चित्त करूगा।"

नरेन्द्र,—"हाय तुमने मूलही में बड़ी भूल की और उस पर विचार न किया। अस्तु, फिर तुम्हारा सशय क्योंकर दूर हुआ?"

वीरसिंह,—"नाथ! मेरी स्त्री जीती है, उसीसे सब सत्य घटना मुझे विदित हुई और उसीके परामर्शानुसार दास अपराध क्षमा कराने के लिये आया है।"

नरेन्द्र—"तुम्हारी स्त्री जीती है, और तुम्हारा कुसंस्कार दूर हुआ, यह सुनकर हमारा चित आप्यायित हुआ! और तुमने जो इतना पश्चात्ताप किया, इससे तुम्हारा प्रायश्चित्त भी होगया। हां अब यह बतलाओ कि तुम्हारी स्त्री कहा है? और मत्री की स्त्री और कन्या का भी कहीं पता है?"

वीरसिंह,—"नाथ! वे सब निरापद अवस्था में कालयापन करती हैं, और शीघ्र ही आप उनसे मिलैंगे; पर मैं उनके विषय में अभी कुछ नहीं निवेदन कर सकता!"

नरेन्द्र,—"क्यों! क्षति क्या है? उनका अनुसंधान पाकर हम उनकी यथेष्ट सेवा करेंगे।"

वीर,—"प्रभो! आप देवकल्प हैं। निश्चिन्त रहिए, उनलोगों

से भेंट होने में अब विशेष विलंब नहीं है। कह तो मैंही देता, पर मेरी स्त्री ने मुझे शपथ देकर इस वृत्तान्त के कहने से वारण किया है; अतएव मैं निरुपाय हूं, आगे जैसी आज्ञा!"

नरेन्द्र,—"यदि ऐसा है तो हम उस वृत्तान्त के सुनने के लिये कुछ भी अनुरोध नहीं करते; पर उन लोगों से कैसे भेंट होगी? तुम कैसे यह बात कहते हो!"

वीरसिंह,—"महाराज! भेंट होने के अनंतर आप सब वृत्तान्त जान लेंगे!"

नरेन्द्र,—"खैर जाने दो! अब तुम्हारी यहां रहने की इच्छा है?"

वीरसिंह,—"जैसी आज्ञा हो, पर अभी मेरा वहीं रहना उत्तम होगा!"

नरेन्द्र,—"शत्रु के यहां कालयापन करने में उत्तमता कैसी?"

वीरसिंह,—"नाथ! यदि मैं वहां रहूंगा तो वहां से आपको गुप्त वृत्तान्त और रहस्यमयी सूचना समय समय पर दिया करूंगा और इससे आपका महोपकार और लाभ होगा?"

नरेन्द्र,—"तुम जहां विश्वस्थ हो, उस स्वामी से विश्वासघात करोगे?"

वीरसिंह,—"सर्प की सेवा करने पर भी उसे काल जानकर सचेत ही रहना नीतिज्ञ का काम है।"

नरेन्द्र,—"इस कार्य्य में क्या तुम्हारी प्रशंसा है! वीरों का क्या यही धर्म है!"

वीरसिंह,—"नाथ! वह दुष्ट स्वामी नहीं, किन्तु स्वामी का बैरी है, अतएव जब तक उस पर मेरा स्वामिभाव था, तब तक मैंने वैसाही निर्वाह किया, पर अब उसे मैं स्वामी की दृष्टि से नहीं देखना चाहता!"

यों कह वीरसिंह अभिवादन करके जिधर से आए थे, उधर ही चले गए और नरेन्द्रसिंह वहीं चिंता करते करते पदचालन करने लगे।

पाठकों को यहां पर एक बात और जान लेनी चाहिए कि नरेन्द्रसिंह के ऊपर जो मन्त्री के परिवार-विषयक जनरव फैलाया गया था, वह वीरसिंह ही का कर्म था। सो इस बात को भी उन्होंने नरेन्द्र पर प्रगट कर दिया था और उनसे अपने अपराध को क्षमा कराकर तब वे वहांसे गए थे।

इक्कीसवां परिच्छेद.

दीर्घदर्शन।

" यं मन्ये मृतमस्मिन् सोप्यायाति प्रसन्नचेतसा किम् ! "

(भट्टकवि)

मध्याह्न काल के समय एक व्यक्ति वीरवेश से अलङ्कृत होकर हाथ में उलङ्ग असि धारण किए निर्जन मार्ग में अश्व दौड़ाता चला जाता था। उसका कलेवर घर्माक्त और बदन परिश्रांत था। वह इतनी अचिंतनीय चिंता में मग्न था कि एक प्रकार आत्मविस्मृत होकर गमन कर रहा था। उसे किसीने आह्वान किया,—"अजी ! खडे रहो, ठहरो, ठहरो, सुनो, कहां भागे जाते हो" पर वह बिना कर्णपात किए ही ऊर्ध्व श्वास से अश्व चालन करता चला जाता था।

कोलाहल बड़ी चमत्कृत वस्तु है। बार बार के आह्वान से सैनिक का ध्यान भग हुआ, उसके कानो में "ठहरो, ठहरो," का शब्द गया; अतएव वह आश्चर्यित और स्तभित हो ठहर कर इधर उधर देखने लगा। इतने में सहसा एक युवा पुरुष ने आकर अश्व की वल्गा धारण करली।

सैनिक,—"तुम कौन हो तुमने किसलिये हमारे कार्य्य में व्याघात किया ? "

युवा,—"छिः ! तुम महा कायर हो, क्यों इतने दिनों से छिपते फिरते हो ? "

सैनिक यह सुनकर क्रोध से जाज्वल्यमान होगया और उसने असि उठाकर कहा,—"तू कौन है, बे उल्लू ! बोल जलदी, नहीं तो अभी तेरा दो खण्ड कर दूंगा ! "

युवा,—"बड़ी प्रशंसा होगी, संसार में बड़ा यश मिलेगा, और हम भी देखेंगे कि तुम कितने बड़े बीर हो ! शेखी और तीन काने ! टांय टांय फिस्स ! ! ! "

"अच्छा ! अब तू सावधान हो ! " यों कहकर सैनिक खड्ग प्रहार किया चाहता था कि युवा उछल कर हट गया और अपना

वेश परिवर्त्तन करके बोला,—"छिः! इतना भी ज्ञान नहीं है! मैं कौन हूँ! यदि सामर्थ्य हो तो मारो तो सही, देखूं!"

उसे देख और,—"हाय सरला!" यों कहकर सैनिक घोड़े से गिरा चाहता था कि सरला ने शीघ्रता से दौड़ कर उसे थाम कर बचा लिया।

सैनिक ने आत्मसंयम करके, अश्व से अवतीर्ण होकर, सरला को गाढ़ाश्लेष किया और उसका मुख चुम्बन करके कहा,—"प्रिये! सरले! तुम इतने दिनों तक कहा थीं?"

सरला,—"यमलोक मे! क्या तुम अब सरला को चाहते हो! यदि चाहते तो सरला के बिना क्षणभर तुम कभी रह सकते! अस्तु, तुम सरला को मरी ही समझ लो, जैसा अबतक समझते थे!"

सैनिक,—"छिः! कैसी बातें करती हो! बुद्धि स्थिर करके बोलो। हाय! तुम्हारा हमने थोड़ा अनुसन्धान किया था! किंतु जब कहीं भी तुम्हारा पता न लगा तो निराश होकर हम रो बैठे।"

सरला,—"हांजी, ऐसी ढेर बातें सुनी हैं, विशेष परिश्रम न करो।"

सैनिक —"सरला! यदि कहो तो हम अपना हृदय चीर कर तुम्हें दिखादें। वहां केवल तुम्हारी ही सरलतामयी मूर्त्ति प्रेमसर्वस्व का आसन ग्रहण किए विराज रही है। तुम क्यों व्यर्थ वाग्बाण से जर्जरित हृदय को और भी छिन्न-भिन्न कर रही हो!"

सरला सैनिक के गले में लपट गई और भावभरे लोचनों से कटाक्ष करके सस्मित बोली,—"मुझे निश्चय है कि तुम मुझे विशेष चाहते हो।"

सैनिक,—"फिर वही बात! विशेष तुम्हें चाहते हैं, यह ठीक है; किंतु क्या न्यून प्रेम भी कहीं अन्यत्र है!"

सरला,—"अच्छा न सही, जाने दो। मैंने भी तुम्हारे अनुसंधान में त्रुटि नही की थी; पर आज मेरा भाग्य सुप्रसन्न हुआ। अस्तु, अब तुम कहां रहते हो?"

सैनिक,—"तुगरलखा के यहां, नरेन्द्र से वैर का बदला लेने के लिये।"

सरला,—"एं! क्या कहा? तुम्हारा अकल में कुछ विकार तो नही आया?"

सैनिक,—"वाह! विकार कैसा? क्या मंत्री महाशय के परिवार का सर्वनाश किसी दूसरे ने किया है? यहसब कुकर्म नरेन्द्र ही का है!"

सरला,—"तब तो देखती हूँ कि तुम महा भ्रम में पतित होकर

पापपङ्क में लिप्त होने का उपाय कर रहे हो; और दोषी को निर्दोषी, तथा निर्दोषी को दोषी साव्यस्त करते हो।"

सैनिक,—"तो तुमलोगों के सर्वनाश का मूल कौन है?"

सरला,—"तुगरल! तुगरलखां!! पापमूर्त्ति तुगरल!!!"

सैनिक,—"ऐं! यह क्या सच कहती हो?"

सरला,—"अभी तक तुम्हारा संदेह नहीं गया?"

सैनिक,—"भई! सरला! सच कहो, यथार्थ बात क्या है?"

सरला,—"यदि सत्यसमाचार सुनने की इच्छा हो तो इधर आओ!"

यों कह कर सरला सैनिक का हाथ थाम कर उसे एक लतामंडप में लेगई। वहां आध घंटे तक वे दोनों अदृश्य रहे। अनन्तर दोनों लताकुञ्ज के बाहर आए। उन दोनों मे परस्पर क्या बातें हुईं, यह हमें ज्ञात नहीं है, अस्तु।

बाहर आकर सरला ने कहा,—"हां तो तुम सब घटनावली समझ गए न? अब तो तुम्हारा भ्रम दूर हुआ न?"

सैनिक,—"सरला! तुम्हारे इस उपकार से हम कल्पान्त तक ऋणी रहेंगे। तुमने हमें घोर पाप से बचाया। हा! कैसा अनर्थ हम करना चाहते थे! यदि तुमसे भेंट न होती तो महापाप हमनेकिया होता, पर जितना पाप का अंश कर चुके, उसका प्रायश्चित क्या है।"

सरला,—"सहज ही है। तुम अभी जाकर महाराज से सत्य सत्य अपना दोष स्वीकार कर उनसे क्षमा मांगो।"

सैनिक,—"धन्य सरला, तुम स्वर्गीय रमणी हो। हम अभी यह कार्य्य करते है। हा! अब तुम्हारे दर्शन कहां और कब होंगे? बतलाओ तो हम वहां आवैं।"

सरला,—"कदापि नहीं! अभी मेरी खोज मत करना, पर धैर्य रक्खो. मुझसे शीघ्रही मिलाप होगा।"

सैनिक,—"तो अब हम यात्रा करें? सरला! आज तुमने हमारा महा उपकार किया।"

सरला,—"कैसी बातें कहते हो, नाथ! दासी ने अपना कर्त्तव्य कर्म ही किया।"

इसके अनन्तर सैनिक ने सरला का कपोल चुम्बन करके प्रस्थान किया। सरला के नेत्रों में जल भर आए और वह पूर्ववत पुरुषवेश विन्यास करके वहांसे चली गई।

पाठक ! चीन्हा आपने ! सरला और सैनिक कौन हैं ? यदि न जान सके हो तो आप अभी उपन्यास पढ़ने के उपयुक्त पात्र नहीं हुए हैं।

हमारे पूर्वपरिचित वीरसिंह सरला के पति हैं। वे आज निज स्त्री से दैवात् नरेन्द्रसिंह की निर्दोषिता सुनकर उसके सत्य परामर्शानुसार निज अपराध क्षमा कराने के लिये महाराज नरेन्द्रसिंह के समीप आए थे। उनसे और महाराज से जो बातें हुईं, वे पाठक गत परिच्छेद मे पढ़ चुके हैं।

वीरसिंह ने सुना था कि नरेन्द्रसिंह आज एकाकी एक स्थान को आनेवाले हैं। यह जान कर अपना बदला लेने के लिये एक अपरव्यक्ति को दूसरी ओर इसीलिये भेज कर स्वय वे नरेन्द्र की खोज में आए थे। किन्तु मार्ग में अनायास सरला से मिलकर उनका सब भ्रम दूर हुआ और पश्चात्ताप करके उन्होंने उस व्यक्ति को, कि जिसे दूसरे मार्ग से भेजा था, रोकने के लिये प्रस्थान किया। उस समय वीरसिंह को निज बुद्धि पर महाक्षोभ हुआ और उन्होंने निश्चय किया कि मनुष्य को पूर्वापर विचार कर तब किसी विषय में अग्रसर होना चाहिए।

निदान वीरसिंह शीघ्रता से उस ओर गए, जिधर उन्होंने एक अपर व्यक्ति को नरेन्द्र के मारने के लिये भेजा था। सो उधर आकर वीरसिंह ने उस व्यक्ति को तो बिदा कर दिया था और फिर उन्होंने महाराज नरेन्द्रसिंह से मिलकर जो कुछ बातें की थीं, उन्हें हम गत परिच्छेद में लिख आए हैं।

सरला जब आध घंटे के लिये वीरसिंह को एकान्त में लेगई थी, उस समय की उन स्त्री-पुरुषो की रहस्यमयी वार्त्ता से हमको या हमारे पाठकों को कोई मतलब नही है। हां, यह जानना परमावश्यक है कि सरला ने वीरसिंह पर सारा रहस्य प्रगट कर दिया था; किंतु अपने रहने का स्थान उनपर नही प्रगट किया था। और वीरसिंह को इस बात का निषेध कर दिया था कि वे नरेन्द्र पर मल्लिका के परिवार विषयक रहस्य को अभी प्रगट न करें। जैसा कि वीरसिंह ने भी किया था; और यह बात हम लिख आए हैं।

बाईसवां परिच्छेद.

सरला की संक्षिप्त कथा।

" विधिर्बलीयान् बलिनाम्। "

(भागवत)

कमलादेवी की एक दूरसंपर्कीया भगिनी थी, उनका नाम तरला था। दोनों भगिनी में परस्पर विशेष सद्भाव था। बिना जाने यह कोई भी नहीं कह सकता था कि तरला कमला की सहोदरा भगिनी नहीं हैं।

तरला को एक बालिका हुई, किन्तु हा! महाकष्ट के समय, जब तरला को अष्टम मास का गर्भ होचुका था, उसी समय दैवदुर्विपाक-वश वह विधवा होगईं। यद्यपि तरलादेवी सती हुआ चाहती थीं, किन्तु अन्तःसत्वा होने के कारण लोगों ने उनकी अभिलाषा पूर्ण न होने दी; किन्तु उसी शोकाग्नि से तरला की बड़ा शोचनीय अवस्था होगई थी। तरला के दोनों कुल में कोई भी ऐसा नहीं था, जिसका आश्रय वह लेतीं, और इतना विभव भी उनके पास नहीं था, जिससे अन्यान्य व्यक्ति उनसे नाता लगाते; किन्तु उस समय एकमात्र कमला ही तरला की आधार थीं। उस समय कमलादेवी पिता के यहां थीं।

दो मास के अनन्तर तरला ने एक कन्यारत्न प्रसव किया। उस दुस्समय में, जो कि वैधव्य दुःख के कारण हुआ था, कन्या के जन्म से तरला को अधीरता की सीमा न रही। दो दिन तक तो शांति रही, तृतीय दिन से तरलादेवी उत्कट व्याधिग्रस्त हुईं। यद्यपि कमला ने किसी प्रकार भी सेवा सुश्रूषा और औषधि आदि में त्रुटि नहीं की थी, तथापि उस व्याधि से तरला ने शान्तिलाभ नहीं किया, और दिन दिन वह अतिशय कातर होने लगीं। सात दिन के अनन्तर कन्या को कमला की गोद में डालकर तरला ने स्वर्गारोहण किया।

पाठक! उस समय कमला को कितना शोक हुआ होगा! यह भुक्तभोगी के बिना कौन सहज ही अनुभव कर सकता है! किन्तु

उस दुःख से कौन वञ्चित रहा ? पितृमातृविहीना कन्या ! ! !

कन्या का मुख देखकर कमला ने अपना दुःख धीरे धीरे दूर किया और उसे लेकर वह श्वसुरालय चली आई थी। कमलादेवी को अभी कोई संतान नहीं हुआ था, न उनकी इस विषय में प्रवल इच्छा ही थी। वह तरला की कन्या को निज कन्या से बढ़कर प्यार करती और लालन पालन करती थीं। तरला के एकमात्र स्मारक चिन्ह का नाम कमला ने 'सरला' रक्खा। सरला जब पांच छः वर्ष की थी, उस समय कमलादेवी को भी एक पुत्री हुई, इसका नाम मल्लिका रक्खा गया। सरला का पौरा फल गया।

मल्लिका के प्रगट होने पर भी कमला का प्रेम सरला के ऊपर उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।उसके दो बरस पीछे विमला को सुशीला हुई थी। कुछ काल के अनन्तर तीनों बालिकाए—सरला, मल्लिका और सुशीला एकत्र बाल्यलीला करतीं, जिससे कमला के हर्ष की सीमा नहीं रहती। देखते देखते सरला विवाह योग्य हुई।

महाराज नरेन्द्रसिंह के यहां विशेष प्रिय वीरसिंह नामक एक विख्यात सेनानायक थे। इनके स्वभाव,गुण, वीरता और बुद्धिमत्ता आदि गुणो से सभी मोहित थे। यद्यपि अभी ये पूर्ण युवावस्था ही में विराजमान थे,पर अपनी रणचातुरी और वीरता के लिये शत्रुदल द्वारा भी प्रशंसित होते थे। वृद्धमंत्री वीरेन्द्रसिंह का उन पर विशेष प्रेम था और वे भी मन्त्री महाशय को पिता समान मानते और आदर भक्ति करते थे।

वीरसिंह प्राय; मंत्री महाशय के घर जाते थे। उनके सन्मुख कमलादेवी निकलती थी। क्योंकि ये कमला और विमला दोनों को "मां और चाची" कहते थे। धीरे धीरे सरला से इनसे प्रेमसंचार होने लगा। सरला भी द्वादश वर्ष की हो चुकी थी और प्रणय का भाव उसके हृदय में जागरूक होचुका था। ऐसी अवस्था में प्रेमाङ्कुर के उत्पन्न होने पर उसका छिपना दुरूह था। क्रमशः यह वृत्तान्त कमला और मन्त्री महाशय ने पूर्णतया जान लिया।

'ये दोनो परस्पर प्रेमवाण से विद्ध होचुके हैं, अतएव अब इनको एक दूसरे से छुडाना भी कठिन है' इत्यादि विवेचना करके मन्त्री महाशय ने सरला का विवाह वीरसिंह के सङ्ग कर दिया। अभिलषित वस्तु के प्राप्त होने से जो अनिर्वचनीय आनंद होता है,

वैसाही सरला और वीरसिंह को हुआ, और दोनो की आशा पूर्ण हुई।

कमला का प्रेम सरला पर अधिक था, और सरला मल्लिका को क्षणभर भी नहीं छोडा चाहती थी, एतदर्थ वह कमलादेवी ही के घर रहती थी और इसमें वीरसिंह को भी कुछ आपत्ति नहीं थी। सरला ने कमलादेवी की शिक्षा पाई थी और वह वीरसिंह की एकमात्र पत्नी थी। उसका मंत्री महाशय के घर ही निवास था, फिर वह क्यों न साहसी और चतुरा होती!

कमलादेवी संस्कृत और फ़ारसी में बडी निपुण थीं, अतएव सरला ने फ़ारसी और संस्कृत की अच्छी शिक्षा पाई थी और वह सेनापति वीरसिंह की उपयुक्त पत्नी और मन्त्रिजाया कमला देवी की यथार्थ पोष्यपुत्री थी।

सरला अत्यंत सुन्दरी थी। यदि मल्लिका को हम शरदऋतु का पूर्ण शशधर कहें तो सरला बसन्त ऋतु का पूर्णचन्द्र थी। जैसी वह रूपवती थी, वैसी ही गुणवती और विद्यावती भी थी। उसे ज़रा अभिमान न था और वह अपने पति से बडा प्रेम करती थी।

यदि एकाएक मंत्री महाशय के कुटुंब पर वज्र न घहरा पडता तो यह कभी संभव न था कि सरला वीरसिंह के हृदय से पृथक होती, किन्तु दुर्घटना ही ऐसी होगई कि जिससे सरला और वीरसिंह का पूरा बिछोह होगया।

इतने पर भी यदि वीरसिंह नव्वाब के यहां न जाते और महाराज के यहा ही बराबर बने रहते तो संभव था कि सरला से उनकी जलदी भेंट होजाती, किन्तु कुचक्र ने उन्हें भी बहँकावट में डाल दिया था। अस्तु, अब दुःख के दिन गए और सुख के आए, यह समझ कर सरला और वीरसिंह,—दोनो अत्यत प्रसन्न हुए।

तेईसवां परिच्छेद.

आशाङ्कुर।

"स्वप्रवृत्तिरपि यत्र दुर्लभा, लीलयैव विदधाति तद्विधिः।"

(सभातरङ्ग)

रात्रि के नौ बज गए थे। निस्तब्ध निशीथ में अंधकार अपना विराट रूप विस्तार करके संसार के ग्रसन के लिये कृतसंकल्प था। कहीं कोई कलरव नहीं; मानो पृथ्वी ने शान्ति का वेशविन्यास किया था। कभी कभी, कहीं कहीं, निशाचर पशुपक्षी अपने चीत्कार से घोर निस्तब्धता भंग कर भय का संचार करते थे। उसी अंधकारमय मार्ग से एक युवा पुरुष चला जाता था। अनतिदूर के प्रकांड वृक्षों को देख कर उसके चित्त में संशय उत्पन्न होता, परन्तु क्षण भर में मनही में लय भी होजाता था। वायु के हिलोरे से वृक्षों के पत्तों के मर्मर शब्द से खटका होता, पर इधर उधर देखने से वह दूर होजाता था। यद्यपि पशुपक्षियों के भयानक रव निर्जन वन में बड़े बड़े धीरों का धैर्य्य च्युत कराते थे, परन्तु-युवा! वह युवा एकाग्र चित्त से अपने लक्ष्य की ओर चला जाता था। सहसा उसकी गति रुकी और वह संदिग्ध होकर खडा हो गया, तथा ध्यान पूर्वक उसने देखा कि,—'एक प्रकाण्डकाय अश्व मरा पड़ा है,उसका अंग क्षतविक्षत और रुधिराक्त है।' युवा यह देख कर सोचने और स्वयं कहने लगा,—"आह! आजकल हत्याकांड की संख्याही नहीं है। यह अश्व उस व्यक्ति का होगा, जो किसी शत्रु के हाथ से निहत हुआ हो! किन्तु वह व्यक्ति कौन था और अश्व किसका है, यह तो कुछ भी नहीं समझ पड़ता!"

उस कार्य्य के कारण को न जान कर युवा बिचारते बिचारते आगे बढ़ने लगा। वह थोडी दूर गया होगा कि उसने देखा कि,— 'एक रक्तमय उत्तरीय और पगडी पडी है।' उससे उस युवा का कुतूहल और भी बढ़ा, पर समयाभाव से युवा को बिचार करने का अवसर न मिला और वह आगे बढ़ने लगा। किन्तु आज क्या है? युवा

बहुत दूर नहीं गया होगा कि पुनः उसकी गति रुद्ध हुई। उसने विचारपूर्वक देखा तो विदित हुआ कि,—'एक पठान कटा हुआ भूशय्या पर पतित है!' यह देख कर युवा के आश्चर्य की सीमा नही रही, और,—'क्यों कर यह मरा, वा किसने इसे मारा;' यह कुछ भी वह न समझ सका। युवा थोड़ी देर वहीं खड़ा खड़ा सोचने लगा। इतनेही में एक अपर व्यक्ति ने आकर अभिवादन किया।

युवा स्तंभित होकर क्षण भर मौन रहा, अनन्तर कुतूहलाक्रांत होकर उसने पूछा,—"तुम कौन हो? इस समय हमसे तुम्हारा क्या काम है?"

आगतुक,—"महाराज! दास को चीन्हते नहीं? स्थिर होइए!"

युवा,—"तुम परिचत से बोध होते हो? क्या वीरसिंह!!!"

वीरसिंह,—"महाराज! आज दास ने पूरा स्वामिकार्य्य कर के अपने पापों का प्रायश्चित्त किया।"

युवा,—"वीरसिंह! इस घोर रजनी में तुम यहां क्या करते हो? पे तुमने क्या कार्य्य किया?"

वीरसिंह,—"आपको कुछ वस्तु मार्ग में मिली थी?"

युवा,—"हां! एक मृत अश्व और दूसरा मरा हुआ यवन!"

वीरसिंह,—"ठीक है, वह व्यक्ति आपके आज इधर आने की बात किसी गुप्तचर से सुनकर आपसे कुव्यवहार करने के अर्थ आया था। मैने पहिले उसे आपाततः समझाया, किन्तु जब उसने मेरी बातें न मानीं तो मैने युद्ध द्वारा उसे मार डाला। यही कारण मेरे इस बन में घोर रजनीयापन करने का है।"

युवा,—"धन्य! आज तुमने यथार्थ में हमारा उपकार किया। इसका पारितोषिक तुम्हें अवसर पर अवश्य मिलेगा।"

वीरसिंह,—"दास इस कृपाही का भूखा है। महाराज! आज कल आप सावधानी से कार्य्य करें, आपके यहां कोई भेदी अवश्य है, जो नव्वाब को गुप्त समाचार देता है। अस्तु, आज्ञा हो तो इस समय दास आपके सङ्ग में रहे। रात्रि का समय है और आप एकाकी हैं।"

युवा,—"नही, वीरसिंह! कोई चिन्ता नहीं। हमलोगों का सहायक ईश्वर है, वही सदा रक्षा करेगा। इस समय हम एक आवश्यक कार्य के लिये जाते हैं, अतः तुम अब प्रस्थान करो।"

वीरसिंह,—"जैसी आज्ञा, आप मेरा घोड़ा लेलें, क्योंकि आप

पैदल हैं।"

युवा,—"नहीं उसकी भी इस समय आवश्यकता नहीं है; हम इस समय पैदल ही जायंगे। हां, तुम हमसे फिर भेंट करना।"

वीरसिंह,—"अवश्य! निरंतर दर्शन करूंगा।" यों कह कर वीरसिंह ने प्रस्थान किया।

पाठक! जाना आपने! ये युवा हमारे परिचित महाराज नरेंद्रसिंह थे। किसी गुप्तचर से महाराज के इधर आने का वृत्तांत सुनकर नव्वाब ने वीरसिंह और एक पठान को इधर भेजा था, पर वीरसिंह ने तो पहिलेही सरला से सब पूर्ववृत्तान्त सुनकर अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप कर महाराज से निज अपराध को क्षमा कराया था; और पुनःअपने संगी यवन से मिल कर उसे इस कार्य से दूर करदिया था, जिसका हाल हम कह आए हैं। परन्तु फिर जब नव्वाब ने किसी गुप्तचर से नरेंद्रसिंह का एकाकी किसीओर जाने का वृत्तान्त सुना तो इनके मारने के लिये उसने एक यवन के साथ वीरसिंह को इधर भेजा। पहिले तो वीरसिंह ने उस यवन को इस गर्हित कार्य से बहुत रोका; किन्तु जब उसने वीरसिंह की बात न मानी और नव्वाब से उनकी चुगली खाने की धमकी दी तो वीरसिंह ने उस पामर यवन को युद्ध करके मार डाला। उसी के मरे हुए घोड़े और (उसकी) लाश को मार्ग में नरेन्द्रसिंहनेदेखाथा।

सरला, वीरसिंह और महाराज का समागम-वृत्तान्त हम पहिले कह आए हैं, यह उसके बाद का प्रसंग है। अस्तु, वीरसिंह के गमनानन्तर, महाराज आगे बढ़े।

आगे जाते जाते महाराज नरेंद्रसिंह मनही मन एक भयङ्कर बात पर बिचार करने लगे, जिसका आभास अभी उन्होंने वीरसिंह से पाया था और जिसे सुन वे एक प्रकार धैर्यच्युत से होगए थे।

वीरसिंह ने अभी नरेंद्रसिंह से यह बात कही थी कि,—'आपके यहां कोई ऐसा गुप्त भेदिया अवश्य है, जो छिपे छिपे नव्वाब तुगरलखा के पास आपके यहांके गुप्त से गुप्त समाचार पहुंचाया करता है।' यह एक ऐसी भयानक बात थी कि जिसने महाराज का ध्यान अपनी ओर आकर्षण किया था और वे उस पर बिचार करते करते आगे बढ़ रहे थे।

चौबीसवां परिच्छेद.
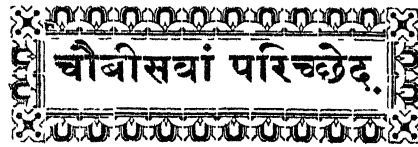
निर्णय में।

"तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय।"

(भर्त्तृहरि)

आधी रात बीत चुकी थी, जब महाराज पूर्वदृष्ट मंदिर के समीप पहुंचे थे। वहां जाकर उन्होंने देखा कि,—"कपाट भीतर से बंद है।" यह देख वे धीरे धीरे कराघात करने लगे।

कुछ देर में भीतर से क्षीणस्वर से किसीने कहा,—

प्रश्न,—"इस समय कौन किवाड़ पीट रहा है?"

उत्तर,—"आशाजीवन, नरेंद्रसिंह!"

प्रश्न,—"किसे चाहते हैं?"

उत्तर,—"जो प्रश्न कर रहा है।"

प्रश्न,—"आप कह सकते हैं कि प्रश्नकारी कौन है?"

उत्तर,—"सरला!!!"

प्रश्न,—"यदि वही हो तो परस्त्री से घोर रजनी में एकान्तस्थल में आपको क्या प्रयोजन है?"

उत्तर,—"छिः! इतना मद आशय! और हमारे संग!"

प्रश्न,—"अस्तु, क्या प्रयोजन है, सो तो कहिए?"

उत्तर,—"कुछ है सही, पर सन्मुख हुए बिना नहीं कह सकते।"

प्रश्न,—"अच्छा! आपके नरेन्द्रसिंह होने ही मे क्या प्रमाण है?"

उत्तर,—"यह नई बात हुई, इसका उत्तर हम क्या दें! प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या आवश्यकता है?"

प्रश्न,—"है, क्योंकि मैं परोक्ष में हूं?"

उत्तर,—"अब हम परास्त हुए, इससे अधिक हम और कुछ नहीं कह सकते?"

प्रश्न,—"परास्त हुए! और वीरवर होकर एक अबला से!!!"

उत्तर,—"आपाततः ऐसा ही है, क्योंकि 'अबला यत्र प्रबला'।"

प्रश्न,—"अच्छा जाने दीजिए; भला यह तो कहिए कि सरला को आपने कभी कुछ दिया है ? "

उत्तर,—"हां, कुछ विशेष नहीं, केवल एक मुक्ता की सुमरनी और एक जड़ाऊ कंगन । "

पाठक ! यह माला मंदिर में मल्लिका के नव साक्षात के अनतर दीगई थी; और कंगन दस्युओं से परित्राण करने के अनतर सरला का महाराज ने दिया था ।

महाराज का इस प्रकार उत्तर पाते ही सहसा द्वार खुला और एक युवा पुरुष बाहर आ, हंस कर बोला,—"धन्य, महाराज ! यही आप का स्वर-परिज्ञान है ? छिः ! आपने प्रतारित होकर किसके संमुख अपना सब गुप्त भेद कह दिया ! चीन्हते नहीं, मैं कौन हूं ? "

यह सुनते और युवा को देखते ही नरेन्द्र की मुखाकृति विकृत हुई, वे स्तंभित होकर निर्निमेष लोचनों से उस युवा की ओर देखने लगे और अन्त मे घबराकर बोले,—"तुम कौन हो ? "

युवा,—"नव्वाब का गुप्तचर ! "

नरेन्द्र,—"हां ! तो सावधान हो, प्रतारक, दुष्ट ! "

यह कहकर नरेन्द्र असि उत्तोलन करके प्रहार करने का उपक्रम करते थे कि युवाने हसकर कहा,—"सावधान, महाराज ! मैं अबला हूं ! "

नरेन्द्र,—"ऐं ! क्या कहा ! अबला ! ! ! "

इस पर "हां ! " कह कर उस युवा ने अपना वेश परिवर्त्तन करके प्रभामयी स्त्री का रूप धारण किया । यद्यपि वहां उस समय विशेष प्रकाश नही था, तथापि उसे चीन्ह कर महाराज ने अपने हाथ से खड्ग भूमि में फेंक दिया और हसकर कहा,—"सरला ! तुम इतना भी जानती हो ! धन्य ! तुम्हारी बुद्धिचातुरी से हम आज अतीव आप्यायित हुए । सरला ! आज तुम्हारे ही पुण्य प्रताप से हमारा प्राण बचा । "

सरला यह सुनकर प्रसन्न होगई और क्षणभर के अनतर उसने व्यग्रता से पूछा,—"ऐं ! क्या कहा, महाराज ! क्या हुआ ? "

नरेन्द्र,—"आज ही हमारी मानवलीला समाप्त होचुकी थी, किन्तु वीरसिंह ने रक्षा की । "

यों कहकर नरेन्द्रसिंह ने मार्ग का सब वृत्तान्त, जो आते समय

हुआ था, सरला से कह सुनाया। वीरसिंह का नाम और गुण सुनकर सरला के हर्ष की सीमा न रही। क्यों? समझे पाठक?

क्षणभर में आत्मभाव गोपन करके वह बोली,—"महाराज! आप के समीप उपकार के ऋणपाश में हमलोग आजन्म बंधी रहेंगी।"

नरेन्द्र,—"क्यों व्यर्थ का बोझ हमारे सिर धरती हो! हमसे तुम्हारा क्या उपकार हुआ है?"

सरला,—"इसी प्रकृति के कारण तो आप देवता कहे जाते हैं!"

नरेन्द्र ने हंसकर कहा,—"पर तुम्हारी दृष्टि में तो हम राक्षसही है!"

सरला,—"छिः! यह क्या आप कहते है! मैने ऐसा कब समझा?"

नरेन्द्र,—"ऐसा ही तुम समझती हो! क्योंकि उसका यही प्रत्यक्ष प्रमाण है कि अब तक तुम हमें अविश्वासी समझ कर अपने प्रकृत परिचय से सतुष्ट नहीं करतीं।"

सरला,—"अवश्य ही, आज सब कुछ कह दूंगी, किन्तु उसके पूर्व एक बात जानने की इच्छा है।"

नरेन्द्र,—"तुम्हारी इच्छा तो आजन्म पूरी नहीं होगी! अस्तु, जो इच्छा हो; सो कह डालो!"

सरला,—"आपने मल्लिका को किस दृष्टि से देखा है और उसके सग कैसा बर्ताव करने की इच्छा है?"

नरेन्द्र,—"सरले! जिन नेत्रों में ससारमात्र की प्रेममाधुरी भरी हो, वेही नयन मल्लिका के ऊपर पतित हुए हैं। अब प्राण, मन, तन सभी उसके होचुके; शेष कुछ भी नहीं है, जिसे देकर अपना हार्दिक भाव हम प्रकट करें।"

सरला,—"क्यों, महाराज! क्या मल्लिका अधिक रूपवती है? संसार में वैसी असख्य रमणी हैं, तब फिर आप उसी पर क्यों इतना आग्रह दिखाते हैं?"

नरेन्द्र,—"यदि तुम हमारी आंखों से मल्लिका को देखतीं तो तुम्हें भी त्रैलोक्य में मल्लिका ही एकमात्र सुंदरी जंचती। औरसुनो, प्रेम क्या रूप की परवा करता है? जहां गुण न देखकर केवल रूपही के लिये प्रेम हो, वह विशुद्ध प्रेम नहीं, किन्तु पाशव-प्रणय है।"

सरला,—"यह आपका अन्याय है। अज्ञातकुलशीला बाला पर हठात् आपको इतना आसक्त होना शोभा नही देता! यह कैसी नीति है!"

नरेन्द्र,—"सरला ! प्रणय जाति, कुल, रूप, धन और आत्म-प्रसाधन का वशवर्त्ती नहीं है। विशुद्ध प्रेम प्राकृतिक और स्वर्गीय पदार्थ है ! इसमे यद्यपि दूषण भी हो, पर प्रणयी उसे भूषण ही समझते हैं।"

सरला,—"अज्ञातकुलशीला के संग राजकुल का संबंध सराहनीय नहीं होगा।"

नरेन्द्र,—"न हो ! चाहे इस संबंध से त्रैलोक्य हमसे विमुख हो जाय; किन्तु सरला ! मल्लिका के सङ्ग सघन कानन में भी हम स्वर्गीय सुख का अनुभव करेंगे, और मल्लिका बिना इंद्रपद भी हमें भार ही विदित होगा। तुम निश्चय जानो, मल्लिका की प्राप्ति की आशा ही से हम अभी तक जीवन धारण कर रहे हैं।"

सरला,—"तो; महाराज ! उसकी आशा आप छोड़ दीजिए।"

नरेन्द्र,—"सरला ! तुम सरला होने पर भी गरला हो !!! हम शपथपूर्वक कहते हैं कि हम मान,सभ्रम,राज्य, परिवार,सांसारिक सुख आदि सर्वस्व की आशा छोड सकते हैं; अपने अमूल्य जीवन की आशा में तिलाञ्जुलि देसकते हैं, पर शरीर में प्राण रहते रहते मल्लिका की आशा नहीं छोड सकते,और न अब अधिक इस प्रकार तुम्हारे वाक्यवाण ही को सहन कर सकते हैं।"

सरला,—"तब तो आप व्यर्थ अपने सुखसदन को विजन वन बनाना चाहते हैं !"

सहस्र वृश्चिक-दंशन से जो यातना अनुभव होती है, सरला के वाक्य से नरेन्द्र के हृदय में उससे भी अधिक दुःख हुआ। उन्होंने क्षणभर मौन रह, दीर्घनिश्वास लेकर भग्न स्वर से कहा,—"सरला ! तुमसे ऐसे उत्तर की प्रत्याशा हमें न थी।"

सरला,—"तो क्या करूं, महाराज ! इसमें मेरा क्या अपराध है ? मैं भी पराधीन हूं।"

नरेन्द्र,—"यथेष्ट हुआ, अब अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। हमारा-तुम्हारा अतिम साक्षात् यही है। यदि विनोद अपनी धरोहर मांगे तो उसे देदेना। आज के तीसरे दिवस मल्लिकादेवी के नाम अपना राज्य लिखकर हम कहा जायगे, यह भी तुम्हें विनोद से ही विदित होजायगा। सरला ! यदि दया करके इतनी बात मल्लिका से कहोगी तो हम तुम्हारे चिर अनुगृहीत रहेंगे। वह यह है कि मल्लिका

हमारे दिए हुए राज्य को स्वीकार करे। और यदि कभी भी वह हमारा स्मरण करेगी तो हमारी आत्मा स्वर्ग में अनंत सुख का अनुभव करेगी। अधिक क्या कहें, अब हमें 'नैराश्य परम सुखम्' प्राप्त हुआ।"

इतना कहते कहते नरेन्द्र का कंठ रुद्ध हुआ और आंखों से बलवती अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वे भग्नहृदय हो वहांसे उठकर गमनोद्यत हुए। उनकी दशा देखकर सरला का सरल हृदय टुकड़े टुकड़े होगया, वह अञ्चलद्वारा अपना नेत्र मार्जित करके प्रकृतिस्थ हुई और नरेन्द्र का हाथ थाम कर कहने लगी,—"महाराज! शान्त होइए, मल्लिका आपही की है, किन्तु—"

नरेन्द्र की बुद्धि चक्कर खाने लगी, और वे स्तंभित होकर खड़े खड़े सरला का मुख देखने लगे।

अनंतर उन्होंने आतुर होकर कहा,-"सरला! नहीं जान पड़ता कि तुम्हारा हृदय कितना गंभीर है और उसमें क्या क्या जंजाल भरा हुआ है! तुम्हारी बातों के तत्व तक पहुंचना नितान्त कठिन है।"

सरला,-"महाराज! मल्लिका आपही की पक्षपातिनी है, किन्तु-"

नरेन्द्र,—"हाय! तुम क्या इस समय हमारे साथ परिहास करके और भी कटे पर नोन छिड़कती हो?"

सरला,—"यह कैसे?"

नरेन्द्र,—"और क्या? कभी मल्लिका की आशा छुड़ाती, और कभी आशा बँधाती हो। भई! तुम्हारी बातों ने हमारे प्राण लेडाले। तुम इतनी वज्रहृदया हो?"

सरला,—"महाराज! न मैंने परिहास किया, और न मिथ्या कहा; आप व्यर्थ मुझ पर दोषारोप करते हैं!"

नरेन्द्र,—"फिर वही बात!!! तुम्हारा जो आन्तरिक अभिप्राय हो, उसे सत्य सत्य कह डालो।"

सरला,—"अब कहूंगी, किन्तु आपसे एक अनुरोध है।"

नरेन्द्र,—"आज हमारे पूरे दुर्भाग्य का उदय हुआ है और बड़े अपशकुन में हम घर से चले हैं, जिससे इतनी मर्मान्तिक यातना सहनी पड़ती है। अस्तु, तुम्हारा अब कौनसा अनुरोध बाकी है? वह भी कहो!"

सरला,—"आप मल्लिका को पावैंगे, किन्तु—"

नरेन्द्र,—"फिर वही ढंग?—"किन्तु" क्या?"

सरला,—"मल्लिका की माता जीती हैं। उनका एक अनुरोध है। बिना उसकी पूर्त्ति किए, मल्लिका का मिलना असम्भव है।"

नरेन्द्र,—"उनका क्या अनुरोध है? शीघ्र कहो! मल्लिका के लिये हम प्राण तक देने को प्रस्तुत हैं।"

सरला,—"आपकी मार्कंडेय की सी आयु हो।"

नरेन्द्र,—अस्तु,वाक्चातुरी छोड़ कर प्रकृत विषय को कहो!"

सरला,—"तो सुनिए, मल्लिका के पिता को जिस दुष्ट ने षड्यंत्र करके हत किया है, जब तक आप उस दुष्ट का सिर न काट लावैंगे, तब तक मल्लिका की माता आपको मल्लिका कभी समर्पण न करैंगी, उनकी ऐसीही प्रतिज्ञा है।"

नरेन्द्र ने गरज कर कहा,—"अभी उस सत्यानाशी का परिचय दो। प्रथम उसका सिर काट कर तब हम दूसरा काम करेंगे! सरला! हमने भी प्रतिज्ञा की कि मल्लिका के बैरी का सिर काटे बिना कदापि उसका पाणिग्रहण न करेंगे।"

सरला आनद से पुलकित होकर कहने लगी,—"धन्य! महाराज! आप देवता हैं! आपसे अवश्य इस कार्य्य का होना सभव है, और मुझे निश्चय है कि आप इसे अवश्य पूर्ण करेंगे; परन्तु — —"

नरेन्द्र,—"फिर कहती हो-'परन्तु'-!!! सरला! तुम्हारे इस-"परन्तु" मय वाग्जाल के आगे हम परास्त हुए!"

सरला,—"महाराज! दासी का अपराध क्षमा करिए। दासी ने जो आपके संग वितडावाद किया, यह भी रहस्य से खाली नहीं है; अतएव अपनी कृपाद्वारा क्षमा कीजिए! हां! अच्छी सुधि आई, वृद्ध मंत्री महाशय का किसने सर्वनाश किया है! यह आप जानते हैं?"

नरेन्द्र,—"यह नूतन रङ्ग कैसा? इस विषय से तुम्हें क्या प्रयोजन?"

सरला,—"सो पीछे निवेदन करूगी, प्रथम यह कहिए कि आप इस वृत्तान्त को जानते हैं?"

नरेन्द्र,—"सरला! ईश्वर जानता है, हमने अतिशय अनुसंधान करने पर भी इस घटना का प्रकृत तत्व नही जाना था, किन्तु थोड़े ही दिन हुए कि अविकल वृत्तान्त जानाहै।यह घृणित कार्य तुगरल का है!"

सरला,—"जानकर भी आप उस दुष्ट को दंड नहीं देते! उस

पापी को आप क्या प्रतिफल देंगे ?"

नरेन्द्र,—"समय सन्निकट है कि इसी हाथ से उस अधम का सिर काट कर मंत्री महाशय के ऋण से हम मुक्त होंगे। अभी तक अवसर नहीं आया कि उसे दंड दें।"

सरला,—"अहा! आप यथार्थ ही प्रातःस्मरणीय महात्मा हैं। आपने जो उसके दण्ड का विचार किया, यह सराहनीय है, पर उसका उपाय क्या किया है?"

नरेन्द्र,—"दिल्ली के बादशाह से इस प्रकार वाक्यदान लेलिया है कि तुगरल का सिर काट कर यदि मंत्री की स्त्री वा कन्या का परिचय मिलेगा तो उनके अर्पण कर अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे। सरला! यह भी बादशाह से निश्चय होगया है कि बङ्गाल के भूम्यधिकारियों की अपहृत स्थावर किंवा अस्थावर सम्पत्तियां भी उन्हें दिलाई जायगी।"

नरेन्द्र की बातें सुनते सुनते सरला का रोम रोम आनंदसिंधु में निमग्न होकर नृत्य करने लगा। मुखाकृति हर्षाप्लुत और नेत्र नीरसंसिक्त हुए! उसने आतुरता का दमन करके नरेन्द्र के चरण पर गिर कर करुणा से कहा,—"बस! महाराज! दासी का मनोरथ पूर्ण होगया। अब आप निस्सन्देह शीघ्र ही मल्लिका को प्राप्त करेंगे। आपकी मल्लिका बड़ी भाग्यशीला है!"

नरेन्द्र,—"एं क्या कहती हो? इन घटनाओं से मल्लिका का कुछ सम्बंध है?"

सरला ने अश्रु संवरण करके कहा,—"महाराज! उन्हीं मंत्री महाशय की एकमात्र पुत्री मल्लिका—आपकी हृदयहारिणी मल्लिका—सौभाग्यवती मल्लिका—मेरी सखी मल्लिका है!!!"

नरेंद्र,—(घबराकर)"यह क्या सत्य है?"

सरला,—"हां, महाराज! इसके सत्य होने में कुछ भी संदेह न कीजिए।"

यह सुनते ही सहसा अशनिपात की तरह नरेंद्र धम् से भूमि में पतित हुए, उनका अंग शीर्ण और मुखाकृति विषण्ण होगई। उन्होंने बोलने की चेष्टा की, किंतु वाक्यस्फूर्त्ति नहीं हुई। उनकी यह दशा देख कर सरला के मर्म में भी आघात लगा, पर वह आत्मसंयम करके शांत हुई, और उसने नरेंद्र का हाथ थाम कर

उन्हें उठाया और कहा,—

" महाराज ! जो होना था, सो तो होचुका; अब आप क्यों इतना खेद करते हैं ?"

नरेंद्र,—"सरला! हमें इस कारण दुःख हुआ कि मन्त्री की स्त्री और कन्या को इतना दुःख है ! हा! मल्लिका की मां की ऐसी प्रतिज्ञा है !"

सरला,—"हां उन्हीकी प्रतिज्ञा है कि, 'जो व्यक्ति तुगरल का सिर काटेगा, चाहे वह कोई हो, उसको मल्लिका अर्पण करूगी;' क्या आप उनसे साक्षात करेंगे ?"

नरेंद्र,—" सरला ! उनके दर्शन से अभी हमे हर्ष के स्थान में शोक ही अधिक होगा, अतएव तुगरल का मस्तक हाथ में लेकर तब हम मल्लिका की माता का दर्शन करेंगे । "

सरला,—"क्यों, क्षति क्या है ? चलिए ! माता आपके देखने के लिये उत्कण्ठित होरही हैं ।"

नरेंद्र,—"अस्तु, जैसा तुम कहो, हमें स्वीकार है ।"

सरला,—" तो चलिए ! मल्लिका आपके देखने के लिये आतुर होरही है, उससे भी मिलिएगा ।"

नरेंद्र,—" सरला ! तुम्हारी असीम कृपा का, जो तुम हम पर कर रही हो, हम क्या प्रत्युपकार करें ? "

सरला,—" अच्छा, वे सब बातें फिर होंगी, अब चलिए; आधीरात होगई होगी ।"

नरेंद्र,—"चलो, परन्तु सरला ! तुमने अपना परिचय न दिया और न सुशीला का । "

सरला,—" सुशीला का परिचय मल्लिका से सुनिएगा और मेरा वृत्तान्त शीघ्र आप जानेंगे, अब आइए ।"

नरेंद्र,—" चलो ।"

अनतर दोनों व्यक्ति वनमार्ग से होकर चले । मार्ग में सरला ने पुनः अपना युवक वेश बना लिया था । योंही वे दोनों नीरव चलने लगे।

पाठक ! वृद्धा से जो अनुमति लेकर सरला आई थी, सो नरेन्द्र को लेकर ग्राम की ओर चली; इसी शुभ यात्रा में उसने अपने पति के भी दर्शन पाए थे ।

पच्चीसवां परिच्छेद.

पुष्पप्रणय।

"साभिप्राय प्रणयसरसं गूढसगूढरागम्।"

(सुभाषित)

संध्या समागतप्राय थी। सूर्य्यदेव प्राची दिशा को अपने कर से लाल दुकूल पहिराकर अस्तमित हुआ चाहते थे। पक्षिकुल कोलाहल करते करते चराई से लौट आकर वृक्षों पर बैठ, अपनी अपनी प्यारी से रात्रि के आने का समाचार सुना, सुख से रजनीयापन करने का परामर्श करते थे। सांध्य शीतल समीर सुगंधि लेकर दशो दिशाओ मे वितरण कर रहा था।

उसी समय एक रमणीय पुष्पोद्यान में पुष्करिणी के प्रशस्त सोपान पर बैठी दो षोडशी बालाए मालाग्रथन करती थी! परस्पर हास विलास करती, एक दूसरी की ओर देख कर हसती और मालाग्रंथन करती थी! यह हमारी परिचित हैं; अर्थात् मल्लिका और सुशीला!

सुशीला ने हँसकर कहा,—"मल्लिका जीजी! सरला कब आने के लिये कह गई है?"

मल्लिका,—"सो मैं क्या जानूं! तुझसे कह गई होगी!"

सुशीला,—"हा! मैने ही तो उसे भेजा है! क्यो! ठीक है न?"

मल्लिका,—"ठीक काहे का? विनोद से मिलियो और क्या! घबराती क्यों है?"

सुशीला,—"हां! हां! सुंदर हार बनाओ, जिसमे प्रियतम की हृदयहारिणी बनो! देखना, कोमलफूलो की कठोर कली प्यारे के हृदय में न चुभा देना!!!"

मल्लिका,—"देख! सुशीला! इतनी चचल न हो, धीरज धर; शीघ्रही तेरा प्यारे से मिलाप होगा!"

सुशीला,—"हे राम! आज शीघ्रता से रात्रि क्यो नही होती!"

मल्लिका ने सुशीला का गुलाबी गाल चूम, हँस कर कहा,—

"सुशीला ! तू व्यर्थ क्यों अपनी सब पंडिताई खर्च कर रही है ? इतने व्यङ्ग का क्या प्रयोजन है ? तू अपनी माला में शिल्पचातुरी दिखा कर विनोद को मोहित कर लीजियो। तू जो इतना शीघ्र विनोद के रंग में रंग जायगी, यह मुझे स्वप्न में भी अनुमान नहीं होता था।"

सुशीला,—"कहां की बात और कहां ले उड़ीं ! वाह ! सच्ची बात कहने पर तुम परिहास करने लगी ! ऐं ! जीजी मैं किस के लिये माला बना रही हूं ? तुम्हारे ही लिये न ! मल्लिका जीजी ! मैं आज तुम्हारा फूलों का श्रृङ्गार करके तुम्हें राधिका बनाऊंगी।"

मल्लिका,—"और मैं तुझे कृष्ण बनाऊंगी ! क्यों ? कैसी सुन्दर रासलीला होगी ? पर उत्तम तो यह होगा कि विनोद कृष्ण और तू राधा बने। न होगा तो सरला ललिता बन जायगी और तब तेरी बनाई माला भी चरितार्थ होगी। अब बोल !!!"

सुशीला,—"भई ! तुमसे बोलकर कौन जीतेगा !!!"

यों कहकर सुशीला निम्नमुखी हुई और लज्जा से मल्लिका की ओर न देख सकी। मल्लिका ने उसका यह भाव समझा; पर वह छोड़नेवाली न थी, सो उसने सुशीला का चिबुक चुम्बन कर हँसते हँसते कहा,—"सुशीला !——"

सुशीला,—"मल्लिका जीजी !——"

मल्लिका,—"तू एक काम करेगी ?"

सुशीला,-"ना, भाई मुझसे तुम्हारा काम न होगा, सरलासे कहो।"

यों कहकर सुशीला हँसने लगी, मल्लिका ने भी हँस दिया। इसी अवसर में भीतर से किसीने आह्वान किया,—" मल्लिका, बेटी ! जरा इधर तो आइयो ! ! !" ये शब्द मल्लिका के कर्णकुहर में प्रविष्ट हुए।

वह शीघ्रता से उठ कर सुशीला से बोली,—" सुशीला ! मां पुकारती हैं, मैं सुन आऊं; तब तक तू शेष फूलों की माला बना ले।"

यों कहकर मल्लिका शीघ्रता से चली गई। उसे कमलादेवी ने पुकारा था। सुशीला वहीं सोपान पर बैठी बैठी मालाग्रन्थन करने लगी। एकाग्र मन से माला ग्रंथन करते करते उसके नेत्रों में दो एक अश्रुबिंदु दीख पड़े, और क्रमशः गंडस्थल से वहमान होकर भूमिसात् हुए; सुतरां सुशीला ने दीर्घनिश्वास लेकर स्वयं कहा,—

"हा ! क्या करूं ! मैं इन मालाओं को लेकर क्या करूंगी ?"

यों कह कर वह उठी और अपनी बनाई समस्त मालाओं को खण्ड खण्ड करके उसने पुष्करिणी में प्रक्षेप कर दिया।

उसने पुनः दीर्घनिश्वास लेकर मंद स्वर से कहना आरम्भ किया,—"इन मालाओं को लेकर मैं क्या करती ? मैं क्या इस सुख के योग्य हूं ? मेरा क्या ऐसा पाटी सा भाग्य है ? वामन होकर आकाशस्थ चंद्र के धरने को हाथ पसारना कैसी मूर्खता का काम है ? क्या वे मुझ अभागिनी को सुहागिनी बनावेंगे ! क्यों वे ऐसा करेंगे ? मुझमें ऐसे कौन से गुण हैं, जिससे वे मुझ पर मोहित होंगे ! न सही; मेरा तन.मन तो अब उनका हो ही चुका। वे मुझे त्याग कर सकते हैं, पर मैं शत जन्म धारण करके भी उनका चरण नहीं छोड सकती। जब कभी अवसर आवेगा, उनके चरण पर गिर, हाथ जोड कर रोते रोते विनीत वचन से निवेदन करूगी कि,—'नाथ ! यह दासी आपही की है, इसे निज चरण की सेवा से वंचित न कीजिए। इससे विशेष कुछ भी दासी नहीं चाहती;' तो इतने विनय पर भी वे क्या कर्णपात न करेंगे ? क्या वे इतने निष्ठुर हैं ! क्या वे ऐसे वज्रहृदय हैं ! क्या वे इतने प्रेमशून्य हैं ! क्या वे ऐसे निर्दय हैं !!! कदापि नहीं; तब मेरी कातरोक्ति पर वे क्यों न ध्यान देंगे ? हाय कब ऐसा सुदिन आवैगा ?——हाय ! पापिनी जिह्वा गल क्यों न गई ? मैंने क्यों देवमूर्त्ति का अविश्वास किया और उसे कटुवचन कहा ! नाथ ! दासी का दोष क्षमा करोगे ? क्या इसका पार——"

यों कहते कहते सुशीला की आखों से वर्षाविन्दु की नाईं अश्रुबिंदु टपकने लगे। उसका कण्ठ रुद्ध और मुख विवर्ण हुआ ! वह नीरव क्रन्दन करने लगी ! इसी अवसर में मल्लिका आगई ! सुशीला उस समय इतनी विह्वल और हृदय शून्य थी कि उसे मल्लिका के आने की आहट न सुनाई दी !

मल्लिका ने ध्यानपूर्वक उसकी दशा के तत्व को समझा और शीघ्रता से उसे कण्ठ लगा कर हंसते हंसते कहा,—" सुशीला ! माला क्यों टूक टूक करके फेंक दी ! क्यों ? तू क्यों इस प्रकार व्यर्थ रोती है ?"

सुशीला ने निज भाव गोपन करने का उपाय न देखकर लज्जा

से रो दिया, यह मल्लिका नहीं सह सकी ! उसने सुशीला का हृदयगत भाव समझ कर भाव परिवर्त्तन कराने के छल से कहा.— "चल, मा बुलाती हैं !"

सुशीला,—"ख़ैर, चलो जीजी !"

अनन्तर दोनों भगिनी गृहाभिमुखी हुईं ।

पाठक ! जिस दिन सरला कमलादेवी से आज्ञा लेकर नरेन्द्रसिंह के बुलाने के लिये गई थी, यह घटना उसी दिन की है। आपको स्मरण होगा, कि मल्लिका और सुशीला, नरेन्द्र और विनोद की दी हुई अगूठियों पर हास परिहास करते करते निज गृहस्थित उद्यान में गई थीं। आज मल्लिका के हर्ष की सीमा नहीं है। वह नरेन्द्र के साक्षात् की प्रत्याशा से उद्विग्न होरही है; और विरहिनी सुशीला ततोधिक विरहयातना भोग रही है। यह ससार की लीला है कि किसी को दुःख और किसी को सुख !!!

पाठक! आपको स्मरण होगा कि जब सरला नरेन्द्रसिंह के बुलाने के लिये जाती थी, तो मल्लिका ने सुशीला को सुना कर विनोद के लाने के लिये भी सरला से कहा था; किन्तु मल्लिका यह भली भाति जानती थी कि,—'आज नरेंद्र के साथ विनोद का आना संभव नहीं है;' क्योंकि कदाचित पाठकों को स्मरण होगा कि आज के मिलने के लिये सरला ने नरेन्द्र को जिस सांकेतिक स्थान पर बुलाया था, वहां पर उनके एकाकी ही आने की बात थी, और हुआ भी ऐसाही; क्योंकि नरेन्द्र अकेले ही सरला से मिलने गए थे, जब उन्हें मार्ग में एक मृत व्यक्ति और वीरसिंह मिले थे।

यही सब सोच समझकर मल्लिका सुशीला के लिये अत्यन्त चिन्तित हुई और उसे उद्यान में से अपने प्रकोष्ठ मे लेगई और वहां जाकर वह अनेक उपायों से सुशीला का जी बहलाने लगी थी।

छब्बीसवां परिच्छेद.
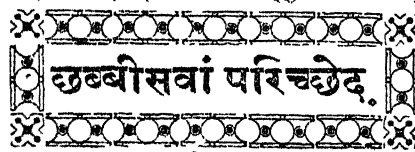
अपूर्व भाव।

" मधुलिह इव मधुविन्दून् विरलानपि भजत गुणलेशान्।"

(वेणीसंहार)

कमलादेवी निज प्रकोष्ठ में बैठी पूजा कर रही थीं। आसन स्थिर और ध्यानबद्ध था। निशीथ का समय होगया था, किन्तु अब भी उनकी पूजा का विराम नहीं था। पूजा समाप्त करके वह पुस्तक पाठ करने लगीं। इसी अवसर में सरला सन्मुख आकर उपस्थित हुई, किन्तु कमला पुस्तक के पाठ में इतनी ध्यानावस्थित थीं कि सन्मुख सरला की सरल मूर्त्ति को नहीं देख सकीं। सरला भी नीरव सन्मुख खड़ी रही।

सरला के समीप एक दूसरी रमणी ने आकर उसका हाथ धरा, यह देख सरला हर्षित होकर धीरे धीरे उसके कान में कहने लगी,—"प्रिय सखी, मल्लिका! महाराज आगए। जाओ, अपने घर में जागती रहना।"

यह रमणी हमलोगों की श्रद्धास्पदा मल्लिकादेवी थी। उसने धीरे से सरला का हाथ दबाकर कहा,—"चुप! मां सुन कर क्या कहेंगी?" यों कहकर वह वहांसे हट गई।

सरला को वहीं खड़े खड़े आधी घड़ी व्यतीत हुई, इतनेही में कमला का पाठ भी समाप्त हुआ और उन्होंने सन्मुख सरला को देख कर उत्साहपूर्वक कहा,—"सरला! तू आगई? क्यों तू कबकी खड़ी है?"

सरला,—"मां! तुम पूजा में थीं; मुझे आए डेढ़ घड़ी हुई होगी, डर से पूजा के समय मैंने आपसे कुछ न कहा।"

कमला,—"हरे! हरे! क्यों नहीं कहा?—अस्तु क्या समाचार है?"

सरला,—"आपके दर्शन के लिये महाराज आए हैं।"

कमला,—"क्या कहा! वे आगए क्या? एं! और तैंने उन्हें

इतनी देर खड़ा किया, मुझे सूचना भी नही दी!! सरला! यह तेरा अन्याय कर्म है। देख! महाराज अपने मन में क्या कहेंगे? वे भी साधारण व्यक्ति नही हैं; वङ्गदेश के प्रधान नरेश हैं।"

सरला,—"मां! ठीक है, किन्तु वे कुछ भी रुष्ट न होंगे। वे मनुष्य नहीं, कोई देवता हैं। वे आपकी माता के तुल्य भक्ति करते हैं। आज्ञा हो तो उन्हे लेआऊं।"

कमला,-"हां! हां! शीघ्रता कर; विलंब क्यों करती है?"

सरला नरेन्द्र के बुलाने के लिए गई और कमला ने कुछ सोच विचार कर मल्लिका को पुकारा,—"बेटी! मल्लिका; यहां जलदी आ; मल्लिका!!!"

मल्लिका पार्श्ववर्त्ती प्रकोष्ठ में बैठी बैठी सब सुनती थी; सो माता के पुकारने से तुरंत वहां गई और लज्जा से वदनावृत कर संकोच से बोली,—"क्या कहती हो, मां!"

कमला,—"बेटी! भागलपुर के महाराज आते हैं, उनके लिये एक उत्तम आसन बिछादे।"

यों कहकर कमलादेवी ने सतृष्ण नयनों से मल्लिका की ओर देखा; कि उसका रोम रोम प्रेमोद्गार से उछल रहा है! उन्होंने कन्या की हार्दिक अवस्था का अनुभव करके अपना हृदय शीतल किया। मल्लिका ने एक ऊनी आसन बिछा दिया। इसी अवसर में महाराज नरेन्द्रसिंह को सङ्ग लेकर सरला आगई। उभयप्रेमियों का हृदय हर्षित हुआ, चार आंखें होते ही दोनों ओर लज्जा का सञ्चार हुआ, और संकोचवश वहांसे मल्लिका पलायन कर गई। यद्यपि कमलादेवी ने दो तीन बार उसे पुकारा,—

"ऐं! भागी क्यो? बेटी, मल्लिका! आ, यहां आ, क्षति क्या है!"

यद्यपि कमला ने बहुत पुकारा, किन्तु मल्लिका नही आई। बालिका के हृदयगत भाव को समझ कर कमला ने चित्तमे हर्षका अनुभव किया। यह दृश्य देखकर महाराज के हृदय में आनन्दस्रोत उमड उठा, वे क्षणभर स्तंभित होकर जहाके तहा खड़े रहे; अनंतर शीघ्रता से कमला के चरणों पर गिरकर बालको की नाई रोदन करने लगे।

उनकी दशा देखकर कोमलहृदया कमला का भी हृदय उमड़ आया, उनकी आंखों से भी बेग से अश्रु पतित होने लगा और क्षणभर किसी को भी वाक्यस्फूर्त्ति नहीं हुई। हठात् कमला ने अपने हाथों

से महाराज को उठाया और उनका मस्तक आघ्राण करके वे अपने अंचल द्वारा उनका नेत्रमार्जन करने लगी।

नरेन्द्र ने गद्गद कंठ से कहा,—"मां! हमारा कौन सा अपराध है, जो हमसे आप इतनी रुष्ट हैं? हाय! आज लों इस अधम के कानों तक आपने अपना वृत्तान्त नहीं पहुंचाया! क्या हम इतने अधम और अयोग्य हैं कि आपकी सेवा सुश्रूषा नहीं कर सकते थे!!!"

नरेन्द्र की करुणापूर्ण बातों से कमला का चित्त आर्द्र होगया, उन्होंने संतुष्टता से कहा,—"वत्स नरेन्द्र! आज मैं यथार्थ ही पुत्रवती हुई। हा! मुझे इतनी आशा न थी कि संसार में कोई मेरा धर्म्मपुत्र होगा। पर आज सहसा ऐसा शब्द सुनकर जो असीम आनन्द मुझे हुआ, उसके रखने के लिये मैं अपने हृदय में अवकाश नहीं पाती। बेटा! यही कारण है कि मैंने आज तक तुम्हें सूचना नहीं दी। और भी—जिस समय यह दुर्घटना उपस्थित हुई थी, उसके कुछ दिन पूर्व वृद्ध महाराज महारानी सहित अन्तर्धान होचुके थे और तुम उस समय उद्विग्न होरहे थे!"

नरेन्द्र,—"मा! बड़े आश्चर्य्य का विषय है कि उस घटना को हुए दो वर्ष व्यतीत हुए और अभी तक आपको हमें सूचित करने का अवसर नहीं मिला!!! अवश्य आप हमसे रुष्ट होंगी!"

कमला,—"नहीं, बेटा! तुमसे रुष्टता कैसी? अस्तु जाने दो, 'गतं न शोचामि!' आज अपने ऊपर तुम्हारा निष्कपट मातृप्रेम देखकर मैं अपने भाग्य की तुलना नहीं कर सकती! हा! अब मुझे कोई दुःख नहीं है! तुम्हें देख कर मेरा हृदय शीतल हुआ! किन्तु—"

नरेन्द्र,—"मां! "किन्तु" क्या कहा? इसका क्या हेतु है?"

कमला ने दीर्घनिश्वास लेकर कहा,—"कुछ नहीं!!!"

नरेन्द्र,—"कुछ नहीं,—यह कैसे निश्चय हो? अवश्य आपके मन में गोप्य बात है!"

कमला,—"विशेष कुछ नहीं, केवल तुगरल का अत्याचार!!!"

नरेन्द्र,—"मां! हम आपके कहने के पूर्व ही, जबकि मंत्री महाशय के सर्वनाश का वृत्तान्त हमने सुना था, बादशाह से तुगरल के वध का निश्चय कर चुके हैं। अब हम उसका शीघ्रही शिरश्छेद करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर मंत्री महाशय के ऋण से मुक्त होंगे, और उस नराधम का छिन्न मस्तक आपके चरणों में धरकर अपने यथार्थ क्षत्रियत्व का

परिचय देंगे, यदि दैवात् हमसे यह कार्य न हुआ तो इस भारमात्र शरीर को चिता के अर्पण कर किसीको अपना कायर कलेवर न दिखावेंगे। मा! आशीर्वाद दो कि इस कार्य मे हम सफलता प्राप्त करें।"

यों कहते कहते वीरावेश से नरेन्द्र की भुजा फड़कने और हृदय धड़कने लगा; नयन अरुण और मुख रक्तिमावर्ण हुआ; अङ्ग प्रत्यङ्ग स्फुरित और उत्साह द्विगुण बढ़ गया। वे सहसा उठ खड़े हुए। उनका अलौकिक भाव देखकर कमला कुछ मन में सशङ्कित हुई; इस लिये उसने करुणापूर्वक नरेन्द्र को हाथ पकड़कर बैठाया और कहा,—

"वत्स! शान्त होवो। तुम अमानुषिक कार्य साधन में समर्थ होगे, यह मुझे निश्चय है।"

नरेन्द्र,—"मां! एक भिक्षा है,यदि दया कर स्वीकार करिए।"

कमला,—"क्या है, बेटा! तुम्हारी बात क्यों न मानूंगी!"

नरेन्द्र,—" पिता माता का दर्शन खाली हाथ नहीं करना चाहिए, अतएव किंचित भेंट है, इसे स्वीकार करिए।"

यों कह कर नरेन्द्र ने एक जवाहिरात का डब्बा अपनी कमर में से खोल कर कमला के चरणों में रख दिया, जिसे वे अपने साथ लाए थे।

कमला अवाक् होकर निर्निमेष लोचनों से नरेन्द्र की ओर देखने लगीं। उनका आशय समझकर नरेन्द्र ने नम्रता से निवेदन किया,—"क्यों, मां! तुम तनय की सेवा के ग्रहण करने में बिचार करती हो? यह क्या उचित है!"

कमला,—"बेटा! इस सेवा को अभी रहने दो, क्षमा करो; फिर मैं इसे लूंगी।"

नरेन्द्र,—"तो आपका इस अधम पर स्नेहमय पुत्र भाव नहीं है, क्या! इससे हमें दुःख न होगा?"

कमला ने घबरा कर शीघ्रता से कहा,—"वत्स! यथेष्ट हुआ, आज मैं तुम्हारे आगे अपना सब अहङ्कार और प्रतिज्ञा विस्मृत हुई।"

नरेन्द्र,—"कैसी प्रतिज्ञा?"

कमला,—"मेरी प्रतिज्ञा थी कि जबतक बैरी का प्रतिशोध न लूंगी, तबतक किसी की सहायता ग्रहण न करूंगी; केवल अपने

निज के आभूषणों से कालक्षेप करूंगी। सो आज मेरी वह प्रतिज्ञा भङ्ग हुई!"

नरेन्द्र,—"मां! आपकी प्रतिज्ञा कदापि दूर नहीं हुई।"

कमला,—"यह कैसे?"

नरेन्द्र,—"इसलिये कि सहायता दूसरे से ली जाती है; प्रत्युत पर-कर्त्तृक-सहायता, सहायता में परिणत है। और जब कि पुत्र का धर्म ही पिता-माता की सेवा करने का है, तो उस अवस्था में पुत्र की सेवा, पिता-माता के निकट सहायता-पद-वाच्य कदापि नहीं होसकती। वस्तुतः हमने सहायता न करके आपकी यत्किंचित सेवा की है; अतएव सेवा को सहायता कह कर आप हमारा हृदय न दुखाइए।"

कमला,—"बेटा! हमें यह नहीं विदित था कि तुम यथार्थ ही देवकल्प हो; नहीं तो आज तक तुमसे मिले बिना मैं धीरज न धरती। अहा! तुम्हारी जितनी प्रशंसा सरला करती थी, तुम उससे भी अधिक शूर, वीर, सज्जन और धीशक्तिसम्पन्न हो।"

नरेन्द्र,—"मां! आप क्यों मुझे लज्जित करती हैं। सरला की बातों का क्या ठिकाना है? उसका स्वभाव ही है कि वह दूसरे की मिथ्या स्तुति किया करती है।"

सरला वहीं खड़ी खड़ी सब बातें मौन होकर सुनती थी। सो उसने अवसर देख कर कहा,—"देखो! मां! मुझे ये कैसी कड़ी बात कहते हैं!"

कमलादेवी और नरेन्द्र, सरला की ओर देख कर हँसने लगे और फिर कमला ने पूछा,—"कौनसी कड़ी बात कही गई, सरला।"

सरला,—"मां! झूठा स्तुति करना तो भाटों का काम है। मैं क्या भाट हूं? कैसी कड़ी बात!!!"

कमला,—(हंसकर) "हां! बात तो बहुत कड़ी है; पर मैं क्या करूं? साली बहनोई की बातों में मैं कुछ नहीं कह सकती। तुम दोनों का जैसा व्यवहार हो, परस्पर समझ लो।"

नरेन्द्र,—"सरला! देखो! मां, यथार्थ निर्णय करती हैं।"

सरला,—"चलो, जी! तुम्हें मैं खूब चीन्हती हूं! मां का एकाङ्गी निर्णय कौन मानैगा!"

कमला,—(हँसकर) "क्यों री, सरला! मैंने पक्षपात किया है? हैं!"

सरला,—"और कहती हौ, नहीं ? भला महाराज के आगे सरला का यथार्थ न्याय कभी होसकता है ?"

सरला की बातों से दोनों हँसने लगे। अनन्तर सरला का इङ्गित पाकर कमलादेवी उठ खड़ी हुईं; तब नरेन्द्र ने उनका चरण स्पर्श करके कहा,—"मां ! आशीर्वाद दीजिए तो मैं प्रस्थान करूं।"

कमलादेवी ने नरेन्द्र के सिर पर हाथ फेर गद्गद कंठ से कहा,—"बेटा ! तुम्हारी, मार्कंडेय की सी अवस्था हो और कराल-वदना, महाकालेश्वरी; भद्रकाली तुम्हारा मङ्गल करें।"

नरेन्द्र ने पुनः प्रणाम किया और कमलादेवी आशीर्वाद देकर गृहान्तर में प्रविष्ट हुईं। तदनन्तर सरला ने नरेन्द्र का हाथ थाम कर कहा,—"इधर आइए।"

फिर वह उन्हें एक परिष्कार प्रकोष्ठ के समीप लेगई और द्वार पर पहुंच कर बोली,—"लो ! अब क्या देखते हो, भीतर प्रवेश करके प्रफुल्ल मल्लिका का विकाश देखो ! ! !"

नरेन्द्र,—"सरला ! तुम निरी मुहंफट्ट हो; किंचित संकोच का लेश तुम नहीं रखतीं।"

सरला,—"अच्छा, मैं निर्लज्जही सही; तुम तो लज्जा के सागर हो न ? जाओ, भीतर जाओ।"

नरेन्द्र,—"तुम भी चलो।"

इस पर "नहीं;" कहकर सरला वहांसे अंतर्हित हुई और प्रसन्नता से नरेन्द्र ने भीतर प्रवेश किया।

महाराज नरेन्द्रसिंह कमलादेवी से जिस भांति मिले, उससे कदाचित पाठकवर्ग नरेन्द्रसिंह के ऊपर चापलूसी का दोष मढ़ेंगे, और यों समझेंगे कि,—'नरेन्द्र ने मल्लिका के पाने की लालसा से उसकी मां की इस प्रकार खुशामद की।' किन्तु नहीं ऐसा नहीं है। बात यह है कि नरेन्द्र की माता राजलक्ष्मीदेवी और मल्लिका की माता कमलादेवी में अत्यंत स्नेह था, इसलिये नरेन्द्र कमला पर माता के समान भक्ति करते थे।

सत्ताईसवां परिच्छेद.

प्रिया-प्रियतम।

"वियोगवन्ह्याकुलिता नरा मुहुर्वाञ्छन्ति संयोगसुधारसं सदा।"
(रत्नमाला)

नरेन्द्र ने भीतर प्रवेश करके देखा कि एक सुसज्जित प्रकोष्ठ में परिष्कार आसन पर लज्जावनतमुखी मल्लिका बैठी बैठी नख से भूमि खनन कर रही है। नरेन्द्र को आते देखकर उसका कोमल हृदय सात्विक भाव के उदय होने से कांपने लगा; अङ्ग कण्टकित और मुख प्रस्वेद मय हुआ। नरेन्द्र की भी यही अवस्था होगई। पदस्तम्भित, अङ्ग प्रत्यङ्ग अचल, और जिह्वा जड होगई! न वे आगे बढ़ सके, न कुछ वाक्यस्फूर्त्ति हुई। क्षण काल तक उभय प्रणयी इसी दशा में रहे; अनंतर मल्लिका उठी और वहांसे भागने का विचार करने लगी।

लज्जाशीला बाला का आन्तरिक भाव प्रणयी के अतिरिक्त और कौन हृदयंगम कर सकता है? अतएव नरेन्द्र ने उसका अभिप्राय समझ, हँस कर कहा,—"प्यारी, मल्लिका! पहिले तो तुम हमसे प्रीतिपूर्वक संभाषण करती थीं; आज क्या है, जो मुख से बोलती भी नहीं! गृहागत अतिथि का ऐसाही स्वागत किया जाता है? वाह! चली, कहां! प्रथम यह कह लो कि हमारा अपराध क्या है जो इतनी रुष्ट होकर तुम यहांसे जाया चाहती हो! प्रियतमे! यह तुम्हारा नूतन भाव है!!!"

मल्लिका लज्जा से म्रियमाण होकर अस्फुट स्वर से बोली,— "तुम्हारे ऐसा बोलना मैं कहांसे सीखूं?"

यह कमनीय कण्ठनिसृत अमृतध्वनि नरेन्द्र के रोम रोम में प्रविष्ट होकर प्रेमोद्गार प्रकट करने लगी। उन्होंने हँसकर मल्लिका को गले लगाकर बैठाया। मल्लिका लज्जित होकर बैठ गई, और हृदय में साहस धर कर पुनः कहने लगी,—"महाराज! क्षत्रिय वीर होकर तुमने इस नीच प्रथा का अवलम्बन कब से किया?"

नरेन्द्र,—"कौनसी प्रथा, प्रिये!—"

मल्लिका,—"अपहरण की प्रथा।"

नरेन्द्र ने हास्य सम्वरण करके कहा,—"अहा! आकाश में अगण्य वारिकण हैं, पर सूर्य्य पृथ्वी का ही रस क्यों अपहरण करता है ?"

मल्लिका,—"तो जाना गया कि तुम्हारे लिये यह कर्म निन्दनीय नहीं है, वरन तुम्हारे लिये,—'गुणायन्ते दोषाः'—"

नरेन्द्र,—"प्रिये! जाने दो, हमने अपना अपराध स्वीकार किया, पर तुम भी तो उसी अपराध की अपराधिनी हो।"

मल्लिका,—"नहीं, उस अपराध के केवल तुम्हीं अपराधी हो, मेरे ऊपर उलटा दोषारोप न करो।"

नरेन्द्र,—"अस्तु तुम्हीं जीतीं, अब इस अपराध का क्या दंड दोगी ?"

मल्लिका,—"और नहीं तो क्या छोड़ दूंगी ?"

इतना कहकर मल्लिका ने निज ग्रथित फूलों की माला लाकर नरेन्द्र के गले में डाल दिया, और एक पुष्पदाम से उनका हाथ बाध कर कहा,—

"अब कहो! बांधा न! बस! यही तुम्हारे योग्य दण्ड है।"

यों कहकर उसने नरेन्द्र का हाथ छोड़ दिया। नरेन्द्र ने जिस अपूर्व स्वर्गीय सुख का अनुभव किया, भुक्तभोगी पाठक उसका अनुभव स्वयं कर सकते हैं।

फिर नरेन्द्र ने मल्लिका को गले लगाकर उसके कपोल का चुंबन किया, और हँस कर कहा,—"देखो, प्यारी! तुमने हमें अधिक दंड दिया है, अतः इस अन्यान्य का दंड तुम्हें भी मिलेगा।"

यों कहकर उन्होंने अपने गले की मालाओं में से एक माला उतार कर मल्लिका के गले में डाल दिया, और पेटक (पाकिट) में से एक हीरे का कंठा निकाल कर मल्लिका के गले में डाल, हँस कर कहा,—"बस! तुम्हारे अन्याय का इतना ही दण्ड यथेष्ट है।"

कंठे की ओर दृष्टिपात करके मल्लिका निर्वाक होकर निर्निमेष लोचनों से नरेन्द्र की ओर देखने लगी। नरेन्द्र ने उसकी अवस्था जानकर कहा,—"क्षति क्या है ? हम क्या तुम्हारे कोई नहीं हैं ?"

मल्लिका,—"यह ठीक है, किन्तु यह मैं न लूंगी। अभी मां को देखकर लूँगी। देखो, तुम्हारी अंगूठी और मोतियों की माला का वृत्तान्त मां ने जान लिया और उन्हें देखा भी।"

नरेन्द्र,—"देख कर वे कुछ कहती थीं ?"

मल्लिका,—"केवल यही कि—'इन वस्तुओं को यत्न से रखना,'—"

नरेन्द्र ने कमलादेवी का हार्दिक भाव और मल्लिका का कोमल स्वभाव समझ कर साहसपूर्वक कहा,—"प्रिये! संदेह न करो। तुम्हारी माता व्यवहार कुशला हैं, इससे वे प्रसन्न ही होंगी।"

मल्लिका,—"तुम मुझे महा लज्जित करवा रहे हो! मां मन में क्या कहेंगी?"

नरेन्द्र,—"कुछ नहीं। अस्तु, वह अँगूठी कहां है?"

यह सुन मल्लिका ने अंगूठी दिखाई। ऐसे अवसर में नरेन्द्र के हृदय में कैसा आनद हुआ होगा, पाठक पाठिकागण इसका अनुभव करलें।

नरेन्द्र ने पुनः पूछा,—"और वह मोतियों का हार?"

लज्जा से मल्लिका ने सिर नीचा कर लिया। उसके कण्ठ में हार देखकर नरेन्द्र के अलौकिक आनन्द की सीमा न रही। मल्लिका को नीरव देख कर उन्होंने कहा,—"प्यारी! अब वह दिन बहुत सन्निकट है कि परस्पर इतना भी अन्तर न रहेगा। हमारे तुम्हारे मध्य में व्यवधान-स्वरूप दुष्ट तुगरल इसी सप्ताह के भीतरही इस संसार से प्रस्थान करैगा, तब तुम महारानी होगी।"

मल्लिका लज्जा से चुप रही, यह देख कर नरेन्द्र ने पुनः कहा,—"क्यों मल्लिका! तुम हमें कैसा चाहती हो?"

मल्लिका,—"अपने मनोमुकुर में अपना मुख देखो!"

नरेन्द्र,—"देख सकते हैं, पर दिखा नहीं सकते, इसीसे तुमसे पूछते हैं।"

मल्लिका,—"तो मैं कैसे दिखाऊं?"

नरेन्द्र,—"नहीं; तुम दिखा सकती हो!"

मल्लिका,—"वाह! कैसे?"

नरेन्द्र ने हँसकर एक स्निग्ध कटाक्ष किया, उससे मल्लिका कुछ लज्जित हुई; किंतु निजभाव गोपन करके भ्रूयुगल उत्तोलन करके बोली,—"चलो! तुम हमसे परिहास करते हो?"

यों कह कर मल्लिका हँस पड़ी, और बात उड़ाने के छल से बोली,—"तुम बड़े निष्ठुर हो।"

नरेन्द्र,—"यह भैरवी में गौरी छेड़ी गई!"

मल्लिका,—"तुम्हें तो रागिनी ही सूझैगी!"

नरेन्द्र,—"तो और क्या कहैं?"

मल्लिका,—"कहोगे क्या? अपने सुख के संगी हो, दूसरा चाहे मरै।"

नरेन्द्र,—"प्यारी! बात क्या है? कहो भी?"

मल्लिका,—"विनोद को संग नहीं लाए?"

यह सुन कर नरेन्द्र ने मल्लिका का अभिप्राय समझा। उन्होंने जाना कि सुशीला को लक्ष्य करके यह बात कही गई; पर बिना हास्यतरङ्ग के रङ्ग फीका देख कर उन्होंने बात आगे बढ़ाई,—"क्यों? विनोद की क्यों खोज है?"

मल्लिका,—"कहते क्या हो? लज्जा नहीं आती? अपना सा आतुर हृदय सबका समझो!"

नरेन्द्र,—"क्या! विनोद बिना मन नहीं लगता?"

मल्लिका के सर्वाङ्ग में सर्पदंशन की भांति यह वाक्यविष बिंध गया, वह थर्रा कर उठ खड़ी हुई और कांपते कांपते रोषकषायित लोचनों से नरेन्द्र की ओर देख दांतों से ओष्ठ काट कर बोली,—"छिः! तुमसे बोलना, झख मारना नहीं तो क्या है?"

नरेन्द्र ने मल्लिका का हाथ थामकर बैठाया और सादर कहा,—"प्यारी! क्या हुआ? इतनी रुष्ट क्यों होगईं?"

मल्लिका,—"चलो! हटो!! छोड़दो!!! अब मैं तुमसे न बोलूंगी। मुझे ऐसा 'रुक्मिणीपरिहास' अच्छा नहीं लगता।"

नरेन्द्र,—"अस्तु, जो हुआ सो हुआ, अब आगे ऐसी त्रुटि न होगी।"

मल्लिका,—"यह भी देखना है।"

नरेन्द्र,—"देख लेना। हां! यह तो कहो कि विनोद से क्या कह दें?"

मल्लिका,—"क्या कहोगे? सुशीला की दशा का बिचार करो?"

नरेन्द्र,—"यही सीधी बात पहले क्यों न कही?"

मल्लिका,—"मुझे स्मरण नहीं था कि इस समय तुम्हें रंग सूझा है; नहीं तो सीधी को उलटी क्यों समझते?"

नरेन्द्र,—"समझाने में तुम्हीं से भूल हुई।"

मल्लिका,—"देवता को किस भांति समझाती!"

नरेन्द्र,—प्यारी! तुम्हारी रुखावट में बड़ी मधुरता है।"

मल्लिका,—"अच्छा योंहीं सही, परन्तु विनोद के लिये क्या बिचार किया?"

नरेन्द्र,—" प्रिये! वह युद्ध में सन्नद्ध है, क्या तुशाला एक सप्ताह तक धीरज न धरैगी?"

मल्लिका,—"तुम क्या युद्ध से पराङ्मुख हो? तब तुमने कितना धीरज धरा है?"

नरेन्द्र,—"अच्छा! हम हारे, तुम्हारी ही बात रही।"

मल्लिका,—" तो विनोद भैया को कब भेजोगे? बतलाओ।"

नरेन्द्र,—"कल, या परसों।"

धीरे धीरे उषःकाल आगया। दो प्रणयी के परस्पर मिलापमें तीन घंटे क्षणभर में बीत गए। पक्षियों के कलरव से दोनों का ध्यान भङ्ग हुआ और घबरा कर नरेन्द्र ने कहा,—" प्यारी! अब शुभ मुहूर्त्त में बिदा करो।"

इस शब्द से मल्लिका के मर्म में कठोर आघात लगा। वह विषण्ण होकर चुप रही।

नरेन्द्र ने उसे गले लगा कर कपोलचुम्बनपूर्वक कहा,—"धैर्य धारण करो, प्यारी! शीघ्रही हम आवैंगे।"

मल्लिका,—"कब आओगे, सच सच कहो।"

नरेन्द्र,—"आज के सातवें दिन, तुगरल का सिर लेकर।"

मल्लिका कुछ और कहा चाहती थी, किंतु न कह सकी; क्योंकि सहसा उस घर में सरला प्रविष्ट हुई। उसे अचानक देख कर मल्लिका लज्जा से सिमट कर दूसरे द्वार से बाहर चली गई और सरला ने हंस कर नरेन्द्र से कहा,—" महाराज! आप जादू जानते हैं!"

नरेन्द्र,—"यह क्या, सरला! तुम्हारी यह गढ़ंत बड़ी अद्भुतहै!"

सरला,—"मेरी सरल हृदया सखा को आपने जादू से मोह लिया।"

नरेन्द्र,—" अच्छा, इसका उत्तर हम फिर देंगे। अब बिदा करो, अतिकाल होता है।"

सरला,—"शीघ्र दर्शन होंगे न!"

इसपर, " अवश्य!" कह कर नरेन्द्र ने मन वहीं छोड़, केवल भारमात्र तन लेकर वहांसे प्रस्थान किया।

पहिला भाग समाप्त